शोधादर्श

59

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
सलाहकार : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री नलिन कान्त जैन
श्री सन्दीप कान्त जैन
श्री अंशु जैन 'अमर'

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -५६

वीर निर्वाण संवत् २५३२ जुलाई २००६ ई.

विषय क्रम

१. गुरुगुण-कीर्तन : श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरि	श्री रमा कान्त जैन	१
२. सम्पादकीय : साहित्यिक पुरस्कार	श्री रमा कान्त जैन	६
३. दिगम्बरत्व का महत्व	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	७
४. वाग्देवी के अवतरण का पर्व - श्रुत पंचमी	श्री अजित प्रसाद जैन	१०
५. Twelve Modes of Reflection	डॉ. शशि कान्त	१४
६. जय जय जिन भगवान	डॉ. गणेशदत्त सारस्वत	१६
७. भ. महावीर का केवलज्ञान स्थल : एक पुनर्विचार	डॉ. सागरमल जैन	१७
८. धन और धर्म	डॉ. धर्मचंद जैन	२१
९. संस्कृत पुराणों में बाहुबली कथा	डॉ. रमेशचन्द्र जैन	२४
१०. आदिपुराण में वर्णित वर्ण और जातियां	डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'	२९
११. समाज का भविष्य और भविष्य का समाज	श्री अंशु जैन 'अमर'	३५
१२. एक विशाल वृक्ष का धराशायी होना	श्री कैलाशचंद जैन	४०
१३. ऐसे थे हमारे बाबू अजित प्रसाद	श्री रोहित कुमार जैन	४१
१४. तपस्या पर आधुनिक [illegible]	डॉ. [illegible] 'अनंग'	४२

१५. खारवेल - पुनश्च	डॉ. शशि कान्त	४६
१६. स्वास्थ्य चर्चा - कोष्ठबद्धता (कब्ज) का उपचार	स्वामी धर्मानन्द	४६
१७. स्वास्थ्य ह्रास मत कीजिये	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	५१
१८. जीवन की राह	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'	५२
१६. चिन्तन-कण :		
दिगम्बरत्व - सैद्धान्तिक चरम अथवा प्रदर्शनीय वेश	डॉ. शशि कान्त	५३
२०. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००५-०६	श्री रमा कान्त जैन	५५
२१. साहित्य-सत्कार		
वसन्तविलास महाकाव्य का तत्त्वानुशीलन; हिन्दी साहित्यकार (संदर्भ कोश); नमामि स्मारिका; स्वतंत्रता संग्राम में जैन (प्रथम खण्ड)	डॉ. शशि कान्त	६१
सारस्वत मनीषी; जैन विद्या के विविध आयाम; पश्चाताप	श्री अंशु जैन 'अमर'	६५
भैया भगवतीदास और उनका साहित्य; भ. बाहुबली गीताख्यान; जिनागम प्रवेश; भजन-मणिमाला; महाश्रमण; माँ ने पूत जना (महाकाव्य); मेरी यायावरी की आड़ी-तिरछी रेखाएं, शिक्षा सेवा, एकांकी कुंज (भाग-दो), तथा राजस्थानी सन्त-साहित्य की लोकतात्त्विक भूमिका तृतीय खण्ड (बिन्दु)	श्री रमा कान्त जैन	६७
२२. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	७०
२३. स्मृतिशेष सुधा जिन्दल	-डॉ. शशि कान्त	७१
२४. पत्रकार - शिरोमणी ज्ञानचन्द जैन	डॉ. शशि कान्त	७२
२५. समाचार विमर्श : अब तैयार होंगे एजुकेटेड कसाई; 'भारत माता की जय' के नारे पर प्रतिबन्ध	श्री रमा कान्त जैन	७४
२६. समाचार विविधा		७५
२७. शाकाहार प्रचारक श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ		७६
२८. अभिनन्दन		८०
२६. शोक संवेदन		८२
३०. आभार		८२
३१. पाठकों के पत्र		८३

श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरि

'अभिधान राजेन्द्र कोश' के प्रणेता,
युगचेता, सुधारक, संयमी, साधक महान।
तुम्हारे कृतित्व से अभिभूत हो,
भावी पीढ़ियां करती तुम्हारा गुणगान।।

राजस्थान के भरतपुर नगर में सन् १८२७ ई. की पौष शुक्ल सप्तमी, गुरुवार, ३ दिसम्बर, को जन्मे तथा २१ दिसम्बर, १९०६ ई. को ७९ वर्ष की वय में राजगढ़ शहर में दिवगंत हुए श्वेताम्बर जैन खरतरगच्छ के प्रभावक आचार्य श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरि जी का जीवन भावी पीढ़ियों के लिये प्रेरणास्पद रहा है। उनके पिताजी श्रेष्ठी श्री ऋषभदास पारेख जी थे और माता जी का नाम केसरीबाई था। उनका बचपन का नाम रत्नराज था। वह प्रारम्भ से ही कुशाग्रबुद्धि थे। शिक्षा ग्रहण करने के साथ उनमें रत्नों की परख करने की कला प्रस्फुटित हुई। अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर वह द्रव्योपार्जन के लिये अपने अग्रज श्री माणेकचंद जी के साथ कोलकाता और श्रीलंका गये और वहाँ रत्नपरीक्षक के रूप में विख्यात हुए। अपने माता-पिता की अस्वस्थता का समाचार पाकर वह घर लौट आये और उनके देहावसान तक भक्तिपूर्वक उनकी सेवा में संलग्न रहे।

सन् १८४७ ई. में लगभग बीस वर्ष की वय में उन्हें खरतरगच्छीय यति श्री प्रमोदसूरि जी के प्रवचनों को सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ जिसके परिणामस्वरूप उनके अन्तस् में सुषुप्त वैराग्य वृत्ति प्रज्वलित हो उठी। अपने अग्रज से अनुमति प्राप्त कर वह उदयपुर में यति श्री हेमविजयजी के करकमलों से अपनी शिखा पर वासक्षेप प्राप्त करते हुए वि.सं. १९०३ की वैशाख शुक्ल ५ को यति रूप में दीक्षित हो गये और उनका नामकरण 'श्री रत्नविजय जी' हो गया।

दीक्षा के अनन्तर यति श्री सागरचन्द्र जी के सान्निध्य में उन्होंने न्याय, कोश, काव्य, अलंकार प्रभृति विषयों का विशेष अभ्यास किया तथा व्याकरण में पारंगत हो गये। अपने आगम ग्रन्थों के साथ-साथ उन्होंने भारतीय दर्शन, **ऋग्वेद, महाभारत, उपनिषद्, योगदर्शन, चाणक्यनीति, पंचतंत्र, हितोपदेश** आदि ग्रन्थों का भी अध्ययन

किया और बहुश्रुत विद्वान हो गये। गुजराती, मारवाड़ी और मालवी भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं पर भी उनका पूर्ण अधिकार था।

रत्नराज जी के ज्ञान एवं अन्य विशेषताओं को लक्ष्य कर श्री प्रमोदसूरि महाराज ने आहोर नगर में श्रीसंघ की सम्मति से वि.सं. १९२३ (१८६६ ई.) की वैशाख शुक्ल ५ को उन्हें सूरिमन्त्र देकर आचार्य पदवी प्रदान की और उनका नाम 'विजय राजेन्द्र सूरि' घोषित किया। आचार्य बनने के पश्चात उनका पहला चातुर्मास खाचरौद नगर में हुआ। इस चातुर्मास के दौरान उन्होंने 'त्रिस्तुतिक सिद्धान्त' का पुनरुद्धार किया। उस सिद्धान्त को लेकर तत्कालीन श्रमण समाज में कई आचार्यों, मुनिवरों ने भयंकर बवाल खड़ा किया तब उन्होंने उनकी चुनौतियों को स्वीकार कर उनसे शास्त्रार्थ किया और विजयश्री प्राप्त की।

श्री राजेन्द्रसूरि जी ने गच्छ सुधार निमित्त यति समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, जर्जर और विकृत परम्परा, रूढ़ियों और शिथिलता को समाप्त कराने हेतु नौ सूत्री सुधार योजना प्रस्तुत की और उसे श्रीसंघ से स्वीकृत कराकर वह सुधारवादी नायक के रूप में स्थापित हुए।

राजेन्द्रसूरि जी ने संसार-वर्धक समस्त उपाधियों का त्याग कर सदाचारी, पंचमहाव्रतधारी जैसे सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त करने हेतु सम्पूर्ण क्रियोद्धार द्वारा सच्चे साधुत्व का अधिग्रहण किया। आत्मशुद्धि हेतु उन्हें अभिग्रह परम्परा प्रिय लगी। उपाश्रयों से लेकर मांगीतुंगी पहाड़ और चामुण्डवन जैसे भयावह वनों तक में उन्होंने इसका प्रयोग किया। अभिग्रह के अन्तर्गत वह कभी तीन-चार तो कभी आठ-आठ उपवास, कभी खड़े-खड़े तो कभी बिना जल ग्रहण किये कर लेते थे। भयावह जंगलों में अपनी काया को तपाते हुए वह अपने मनोबल की परीक्षा स्वयं लेते रहे। जंगलों में रात्रि समय में चीतों और भालुओं ने जब-जब उन पर आक्रमण किया तब वह अडिग रह 'नवकार मंत्र' की साधना में ऐसे लीन रहे कि जंगली जन्तु उनकी परिक्रमा करने को बाध्य हुए और उनके पास बैठने लगे। इस प्रकार साधना से उन्होंने अमूल्य आध्यात्मिक शक्ति संचित की, किन्तु उन्होंने उसका उपयोग कभी चमत्कारों हेतु नहीं किया। आध्यात्मिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिये उन्होंने जिनवाणी पर श्रद्धा रखने पर विशेष जोर दिया। 'जिन शासन में चमत्कारों को कोई स्थान नहीं' ऐसी ब्रह्म घोषणा कर उन्होंने डोरे, तावीज आदि द्वारा जनमानस को लूला करने वालों को जबरदस्त फटकार लगाई थी।

अपने श्रमण जीवन में सूरि जी ने कन्या पाठशालाओं सहित कई पाठशालाएं स्थापित कराई। दहेज उन्मूलन और वृद्ध विवाह निषेध का वह आजीवन प्रचार करते रहे। पर्वतों की हरियाली वन-उपवनों की शोभा तथा शान्ति एवं मन को सुखदायी है, बताकर, उनकी रक्षा हमारे जीवन के लिये अत्यावश्यक है-कहकर वह पर्यावरण रक्षण के लिये भी जोर देते रहे।

राजेन्द्रसूरि जी को अनेक प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराने और अनेक नये मन्दिरों की प्राण प्रतिष्ठा कराने का श्रेय रहा। उन्हें पालनपुर, मांडवा, कोरंटा जी जैसे अनेक तीर्थों का पुनरुद्धार कराने, जालोर दुर्ग में पड़े शास्त्रों को हटवाने तथा मोहनखेड़ा में एक नया तीर्थ स्थापित करने का भी श्रेय रहा।

ज्ञान की अखण्ड उपासना में लीन विद्याव्यसनी श्री राजेन्द्रसूरि जी ने स्वयं साहित्य सृजन के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थों के संरक्षण का तथा अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की स्वयं प्रतिलिपि करके उन्हें स्व संस्थापित ज्ञान भण्डारों में संरक्षित करने का महान कार्य किया था। कहते हैं उन्होंने मालवा में कुक्षी, राजगढ़, आलिराजपुर, बड़नगर, रतलाम, जावरा और खाचरोद नामक ७ स्थानों पर तथा मारवाड़ में आहोर, जालोर, बागरा, सियाणा और शिवगंज नामक ५ स्थानों पर ज्ञान भण्डार संस्थापित किये थे। श्रद्धेय अगरचन्द नाहटा जी ने **श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरि स्मारक-ग्रंथ** (१९५६-५७ ई.) में प्रकाशित अपने लेख में यह उल्लेख किया है कि आहोर का भण्डार तो उन्होंने स्वयं जाकर देखा था और वहाँ करीब २५० बण्डलों में ३५०० हस्तलिखित प्रतियां थीं तथा ४००० मुद्रित पुस्तकें थीं।

नाहटा जी ने अपने लेख में यतीन्द्र सूरि जी से प्राप्त सूचना के आधार पर साहित्य-सृजक श्री विजय राजेन्द्रसूरि जी की ६३ कृतियों की एक तालिका दी है। उनमें से ३६ मुद्रित और २७ अमुद्रित सूचित की हैं। उस तालिका का अध्ययन-विश्लेषण करने से विदित होता है कि उनकी सर्वप्रथम कृति **होलिका प्रबंधसार** थी। उसकी रचना उन्होंने वि.सं. १९१६ (सन् १८५९ ई.) में ३२ वर्ष की वय में की थी और वह अमुद्रित रही। वि.सं. १९६३ (सन् १९०६ ई.) में रचित **कमलप्रभा शुद्ध रहस्य** (मुद्रित) कदाचित् उनकी अन्तिम रचना है। वि.सं. १९१६ के ११ वर्ष उपरान्त वि.सं. १९२७ में उनके द्वारा मारवाड़ी भाषा में **पर्युषणाष्टान्हिका व्याख्यान** (मुद्रित) की रचना किये जाने का उल्लेख मिलता है। और तब से अन्त समय तक उनकी लेखनी सतत प्रवहमान रही।

उनके द्वारा समय-समय पर रचित विभिन्न जिनस्तुतियां उनके ग्रन्थ **प्रभु स्तवन सुधाकर** में संकलित हैं। और चोमासी, ज्ञानपंचमी, नवपदतप ओली एवं दीपमालिका से सम्बन्धित देववंदन विधियां **देववंदनमाला ग्रन्थ** में ग्रथित है। **सकलैश्वर्य (विहरमान जिन) स्तोत्र, विहरमाण जिनचतुष्पदी** और **पंच सप्तिशत स्थान चतुष्पदी** रचनाएं एक साथ प्रकाशित हैं।

संस्कृत में गद्य में उन्होंने **अक्षयतृतीया कथा, रजःपर्वणि होलिका कथा, उपदेशरत्नसार, दीपमालिका कथा, खर्परतस्कर प्रबन्ध, उत्तमकुमारोन्यास** एवं **पंचाख्यान कथासार** का प्रणयन किया था। **कल्पसूत्र** पर **श्रीकल्पसूत्र बालावबोध** और **कल्पसूत्रार्थप्रबोधिनी** की रचना की थी।

कुमुदचन्द्र के **कल्याणमन्दिर स्तोत्र** पर भी उन्होंने लेखनी चलाई थी। सिद्धान्त विषय में भी उनकी लेखनी चली और उन्होंने **सिद्धान्त प्रकाश** नाम से एक खण्डनात्मक कृति का तथा **सिद्धान्त बोलसागर** नामक एक अन्य रचना का प्रणयन किया था और मारवाड़ी भाषा में **प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका** रची थी।

सूरि जी अच्छे संगीतज्ञ भी थे। उन्होंने अनेक पद्यबद्ध रास और चौपाइयों की रचना की थी। जनसाधारण के लिये अनेक कृतियों की रचना उन्होंने अपनी प्रिय भाषा मारवाड़ी, भालवी और गुजराती में की, किन्तु प्राकृत और संस्कृत भाषाओं में उनकी गहरी पैठ का कोई सानी नहीं रहा। अपने **शब्दाम्बुधि कोश** में जहाँ उन्होंने प्राकृत शब्दों को संस्कृत अनुवाद और हिन्दी अर्थ के साथ संग्रहीत किया है, वहीं **अभिधान राजेन्द्र कोश** में मूल प्राकृत शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते समय उनके संस्कृत रूप, लिंग और व्युत्पत्ति का भी ज्ञान कराया है तथा उन शब्दों के तमाम अर्थ सन्दर्भ सहित प्रस्तुत कर उन्हें पूर्णतः व्याख्यायित किया है। अर्द्ध मागधी प्राकृत भाषा के इस शब्द कोश में लगभग साठ हजार पारिभाषिक शब्दों की अर्थ सहित व्याख्या की गई है और संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के ४५० ग्रन्थों से उद्धरण देकर श्लोकान्वय के साथ विवेचन किया गया है। जैन आगम ग्रन्थों के साथ-साथ **ऋग्वेद, महाभारत, उपनिषद्, योगदर्शन, चाणक्यनीति, पंचतंत्र, हितोपदेश,** वैद्यकीय ग्रन्थ **चरक संहिता** प्रभृति अनेक जैनेतर ग्रन्थों का भी उपयोग कर इसके कर्ता ने इसे विश्वकोश का स्वरूप प्रदान किया है। कहते हैं कि जैन धर्म-दर्शन का तो कोई विषय इसमें अछूता नहीं रहा है। इस कोश का प्रणयन सूरि जी ने ६० वर्ष की वय में प्रारम्भ किया था जो अन्त समय तक निरन्तर पूर्णता की ओर अग्रसर होता रहा। लगभग बीस वर्ष

के परिश्रम का प्रसून यह विशालकाय कोश सात भागों में लगभग दस हजार पृष्ठों में प्रकाशित है। श्री मांगीलाल भूतोड़िया जी के अनुसार अनेक विख्यात भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इस कोश का अध्ययन-मनन करके इसकी मुक्त कंठ से सराहना की है और इसके प्रणेता को **विश्वपूज्य** की उपाधि से अलंकृत किया है।

इस वर्ष दिसम्बर **में श्रीमद्** विजय राजेन्द्र सूरि जी को दिवंगत हुए सौ वर्ष हो जायेंगे। अपनी साधना, युगचेता सुधारक की भूमिका, संयमी जीवन और ज्ञान सम्पदा के लिये तो वह स्मरण किये जाते रहेंगे ही, किन्तु अपने **अभिधान राजेन्द्र कोश** के लिये युगान्तर तक अमर रहेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ इन महान विभूति को विनयांजलि अर्पित है।

- रमा कान्त जैन

◆◆◆◆◆

स्वयंभू पुरस्कार-२००६

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष-२००६ के **स्वयंभू पुरस्कार** के लिए अपभ्रंश से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित **रचनाओं की** चार प्रतियां **३० सितम्बर २००६** तक आमंत्रित **हैं।** इस पुरस्कार में रु. २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। **३१ दिसम्बर, २००२** से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियां सम्मिलित नहीं की जायेंगी।

महावीर पुरस्कार एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार

प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान, श्री महावीरजी के वर्ष-२००६ के **महावीर पुरस्कार** के लिए जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबन्ध की चार प्रतियां **३० सितम्बर, २००६ तक** आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में **प्रथम स्थान प्राप्त** कृति को रु. २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा **तथा** द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को **ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार** रु. ५००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। **३१ दिसम्बर, २००२** के पश्चात् प्रकाशित पुस्तकें ही इसमें सम्मिलित की जा सकती हैं।

इन पुरस्कारों हेतु नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए अकादमी **कार्यालय/संस्थान** कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र व्यवहार करें।

- डॉ. कमल चन्द सोगाणी, संयोजक

सम्पादकीय

साहित्यिक पुरस्कार

यह प्रसन्नता का विषय है कि आज जैन समाज में साहित्य सृजन को प्रोत्साहित करने और विद्वान मनीषियों का सम्मान करने हेतु विभिन्न संस्थाओं की ओर से वर्ष भर में शताधिक पुरस्कार दिये जा रहे हैं। जैसा कि 'अर्हत् वचन' के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन ने व्यक्त किया है, ये पुरस्कार विद्वानों के लिये टॉनिक का कार्य करते हैं और आगे सृजन करने हेतु प्रेरणा प्रदान करते हैं। सभी पुरस्कारों के लिये प्रविष्टियां आमन्त्रित की जाती हैं। चयन में पारदर्शिता बरतने का दावा किया जाता है। किन्तु चयन में यह पारदर्शिता कैसे बरती जाती है, इसके लिये 'पार्श्व ज्योति' के जनवरी-फरवरी २००६ के अंक में पृष्ठ २३-२४ पर प्रकाशित डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन का 'अथ पुरस्कार पुराण' दृष्टव्य है। प्रायः देखने में यह आता है कि प्रायोजक 'अंधा बाटे रेवड़ी और अपनों को दे' कहावत को चरितार्थ करते हैं। कुछ विद्वान् मनीषियों को बार-बार पुरस्कृत होने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो अनेक योग्य होते हुए भी प्रायोजकों के कृपाभाजन न होने से बराबर उपेक्षित बने रह जाते हैं।

पुरस्कार सम्मान का विषय है जो किसी विद्वान मनीषी को उसकी विद्वत्ता को मान प्रदान करने हेतु दिया जाता है, वह आवेदन कर मांगे जाने की वस्तु नहीं है। साहित्य-सृजन विद्वद् जगत के समक्ष प्रायः आता रहता है। अतः अपनी समझ से इसके लिये आवेदन प्राप्त करने के स्थान पर चयन समितियों को स्वयं कृतियों की गुणवत्ता और कृतिकारों के कृतित्व के समग्र आकलन के आधार पर पुरस्कार प्रदान करने का निर्णय लेना चाहिये। साथ ही, व्यक्ति विशेषों को ही बार-बार पुरस्कृत किये जाने के स्थान पर नयी प्रतिभाओं को भी सम्मानित करना चाहिये ताकि साहित्य-सृजन की धारा सतत प्रवहित होती रहे।

- रमा कान्त जैन

◆◆◆◆◆

दिगम्बरत्व का महत्व

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

मोक्ष-प्राप्ति के लिए साधक की चरम अवस्था में दिगम्बरत्व अनिवार्य है, किन्तु वह अन्तरंग एवं बाह्य, दोनों ही प्रकार का युगपत् होना चाहिए, तभी उसकी सार्थकता है। यह मार्ग दुस्साध्य है। यही कारण है कि लगभग एक सवा करोड़ जैनों की संख्या में २५० सौ के करीब ही दिगम्बर मुनि हैं। वे सभी दिगम्बरत्व के साधक हैं और प्रायः २८ मूलगुणों को निरतिचार से पालन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि दिगम्बर मुनि अपनी अत्यन्त कठोरचर्या, व्रत, नियम, संयम तथा शीत-ऊष्ण-दंश-मशक-नागन्य-लज्जा आदि बाईस परीषहों को जीतने एवं नाना प्रकार के उपसर्गों को सहन करने में सक्षम होता है। उसका जीवन एक खुली पुस्तक होता है। ज्ञान की उसमें कमी या अल्पाधिक्य हो सकता है। संस्कारों या परिस्थतिजन्य दोष भी लक्ष्य किये जा सकते हैं, अथवा दिगम्बर मुनि के आदर्श की कसौटी पर भी वह भले ही पूरा-पक्का न उतर पाये, तथापि अन्य परम्पराओं के साधुओं की अपेक्षा अपने नियम-संयम, तप एवं कष्ट सहिष्णुता में वह श्रेष्ठतर ही ठहरता है। फिर जो मुनि आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ करते हैं, उन मुनिराजों की बात ही क्या है, वे सच्चे साधु या सच्चे गुरू ही आचार्य-उपाध्याय-साधु के रूप में पंच-परमेष्ठी में परिगणित हैं, वे मोक्षमार्ग के पूजनीय एवं अनुकरणीय मार्गदर्शक होते हैं। वे तरणतारण होते हैं। उन्हीं के लिए कहा गया है-

धन्यास्ते मानवाः मन्ये ये लोके विषयाकुले।
विचरन्ति गतग्रन्थाश्चतुरंगे निराकुलाः।।

इस दिगम्बर मार्ग के प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर आदिदेव ऋषभ थे। जिनदीक्षा लेने के उपरान्त उन्होंने दिगम्बर मुनि के रूप में तपश्चरण करके केवलज्ञान एवं तीर्थंकर पद प्राप्त किया था। उनके भरत-बाहुबली आदि अनेक सुपुत्रों और अनगिनत अनुयायियों ने इसी दिगम्बर मार्ग का अवलम्बन लेकर आत्मकल्याण किया है। भगवान ऋषभ के समय से लेकर अद्य पर्यन्त यह दिगम्बर मुनि परम्परा अविच्छिन्न चली आयी है। बीच-बीच में मार्ग में काल-दोष से विकार भी उत्पन्न हुए, चारित्रिक शैथिल्य भी आया, किन्तु संशोधन-परिमार्जन भी होते रहे हैं।

जैन परम्परा का स्वयं वह श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी, जो जैन साधु के लिए दिगम्बरत्व को अपरिहार्य नहीं मानता और साधुओं को सीमित-संख्यक, बिनसिले श्वेत वस्त्र धारण करने की अनुमति देता है, इस तथ्य को मान्य करता है कि प्रथम

तीर्थंकर ऋषभदेव तथा अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर अपने जीवन में अचेलक अथवा दिगम्बर ही रहे थे, अन्य अनेक पुरातन जैन मुनि दिगम्बर रहे, तथा यह कि जिनमार्ग में जिनकल्पी साधुओं का श्रेष्ठ एवं श्लाघनीय रूप अचेलक है। कला के क्षेत्र में भी ८वीं-९वीं शती ई. से पूर्व की प्रायः सभी उपलब्ध तीर्थंकर या जिनप्रतिमाएं दिगम्बर ही हैं और वे उभय सम्प्रदायों के अनुयायियों द्वारा समान रूप से पूजनीय रहीं, आज भी हैं। कालान्तर में साम्प्रदायिक भेद के लिए श्वेताम्बर साधु जिनमूर्तियों में भी लंगोट का चिन्ह बनवाने लगे। मुकुट, हार, कुंडल, चोली-आंगी, कृत्रिम नेत्र आदि का प्रचलन तो इधर लगभग दो-अढ़ाई सौ वर्ष के भीतर ही हुआ है।

जैन-परम्परा में ही नहीं, अन्य धार्मिक परम्पराओं में भी श्रेष्ठतम साधकों के लिए दिगम्बरत्व की प्रतिष्ठा की गयी प्राप्त होती है। प्रागैतिहासिक एवं प्राग्वैदिक सिन्धु-घाटी सभ्यता के मोहन-जोदड़ो से प्राप्त अवशेषों में कायोत्सर्ग दिगम्बर योगिमूर्ति का धड़ मिला है। स्वयं **ऋग्वेद** में वातरशना (दिगम्बर) मुनियों का उल्लेख हुआ है। **कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक** में उक्त वातरंशना मुनियों को श्रमणधर्मा एवं ऊध्वरेतस (ब्रह्मचर्य से युक्त) बताया है। **श्रीमद्भागवत** में भी वातरशना मुनियों के उल्लेख हैं तथा वहां व अन्य अनेक **ब्राह्मणीय** पुराणों में नाभेय ऋषभ को विष्णु का एक प्रारम्भिक अवतार सूचित करते हुए दिगम्बर चित्रित किया गया है। ऐसे उल्लेखों के आधार पर स्व. डॉ. मंगलदेव शास्त्री का अभिमत है कि 'वातरशना-श्रमण' एक प्राग्वैदिक मुनि परम्परा थी और वैदिक धारा पर उसका प्रभाव स्पष्ट है।

कई उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, **रामायण, महाभारत** आदि अनेक ब्राह्मणीय धर्मग्रन्थों, **वृहत्संहिता, भर्तृहरिशतक** तथा क्लासिकल संस्कृत साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों के उल्लेख एवं दिगम्बरत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। ब्राह्मण परम्परा में ६ प्रकार के सन्यासियों का विधान है जिनमें तुरायातीन श्रेणी के सन्यासी दिगम्बर ही रहते थे। जड़-भरत, शुकदेव मुनि आदि कई दृष्टान्त भी उपलब्ध हैं। परमहंस श्रेणी के साधु भी प्रायः दिगम्बर रहते हैं। मध्यकालीन साधु-अखाड़ों में भी एक अखाड़ा दिगम्बरी नाम से प्रसिद्ध है। पिछली शती के वाराणसी निवासी महात्मा तेलंग स्वामी नामक सिद्ध योगी, जो रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे प्रबुद्ध संतों एवं सुधारकों द्वारा भी पूजित हुए, सर्वथा दिगम्बर रहते थे। बौद्ध भिक्षुओं के लिए नग्नता का विधान नहीं है, किन्तु स्वयं गौतमबुद्ध ने अपने साधनाकाल में कुछ समय तक दिगम्बर मुनि के रूप में तपस्या की थी। यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों में भी सहज नग्नत्व को निर्दोषता का सूचक एवं श्लाघनीय माना गया है।

जलालुद्दीन रूमी, अलमन्सूर, सरमद जैसे सूफी संतों ने दिगम्बरत्व की सराहना की। सरमद तो सदा नंगे रहते ही थे। उनकी दृष्टि में तो 'तने उरियानी (दिगम्बरत्व) से बेहतर नहीं कोई लिबास, यह वह लिबास है जिसका न उल्टा है न सीधा'। सरमद का कौल था कि 'पोशानीद लबास, हरकारा ऐबदीद, बे ऐबारा लबास अयानीदाद'- पोशाक तो मनुष्य के ऐबों को छिपाने के लिए है, जो बेऐब-निष्पाप हैं उनका परिधान तो नग्नत्व ही होता है। नन्द-मौर्य कालीन यूनानियों ने भारत के दिगम्बर मुनियों (जिम्नोसोफिस्ट) के वर्णन किये हैं, युवान-च्वांग आदि चीनी यात्रियों ने भी भारत के विभिन्न स्थानों में विद्यमान दिगम्बर (लि-हि) साधुओं या निर्ग्रन्थों का उल्लेख किया है। सुलेमान आदि अरब सौदागरों और मध्यकालीन यूरोपीय पर्यटकों में से कई ने उनका संकेत किया है। डॉ. जिम्मर जैसे मनीषियों का मत है कि प्राचीन काल में जैन मुनि सर्वथा दिगम्बर ही रहते थे।

वास्तव में दिगम्बरत्व तो स्वाभाविकता और निर्दोषिता का सूचक है। महाकवि मिल्टन ने अपने काव्य **'पैरेडाइज़ लॉस्ट'** में कहा है कि आदम और हव्वा जब तक सरलतम एवं सर्वथा सहज निष्पाप थे, स्वर्ग के नन्दन कानन में सुखपूर्वक विचरते थे, किन्तु जैसे ही उनके मन विकारी हुए उन्हें उस दिव्यलोक से निष्कासित कर दिया गया। विकारों को छिपाने के लिए ही उनमें लज्जा का उदय हुआ और परिधान (कपड़ों) की उन्हें आवश्यकता पड़ी। महात्मा गांधी ने एक बार कहा था, "स्वयं मुझे नग्नावस्था प्रिय है, यदि निर्जन वन में रहता होऊं तो मैं नग्न अवस्था में रहूं।" काका कालेलकर ने क्या ठीक ही कहा है, "पुष्प नग्न रहते हैं। प्रकृति के साथ जिन्होंने एकता नहीं खोयी है ऐसे बालक भी नग्न घूमते हैं। उनको इसकी शरम नहीं आती है और उनकी निर्व्याजता के कारण हमें भी लज्जा जैसा कुछ प्रतीत नहीं होता। लज्जा की बात जाने दें, इसमें किसी प्रकार का अश्लील, वीभत्स, जुगुप्सित, अरोचक हमें लगा है, ऐसा किसी भी मनुष्य का अनुभव नहीं। कारण यही है कि नग्नता प्राकृतिक स्थिति के साथ स्वभाव शुदा है। मनुष्य ने विकृत ध्यान करके अपने विकारों को इतना अधिक बढ़ाया है और उन्हें उल्टे रास्तों की ओर प्रवृत्त किया है कि स्वभाव सुन्दर नग्नता सहन नहीं होती। दोष नग्नता का नहीं, अपने कृत्रिम जीवन का है।"

वस्तुतः निर्विकार दिगम्बर सहज वीतराग छवि का दर्शन करने से तो स्वयं दर्शन के मनोविकार शान्त हो जाते हैं- अब चाहे वह छवि किसी सच्चे साधु की हो अथवा जिन-प्रतिमा की हो। आचार्य सोमदेव कहते हैं कि समस्त प्राणियों के कल्याण में लीन ज्ञान-ध्यान तपःपूत मुनिजन यदि अमंगल हों तो लोक में फिर और क्या ऐसा है जो अमंगल नहीं होगा।

◆◆◆◆◆

वाग्देवी के अवतरण का पर्व - श्रुत पंचमी

- श्री अजित प्रसाद जैन

जैन आगमों की रचना के विषय में यह ऐतिहासिक तथ्य है कि अन्तिम तीर्थंकर महाप्रभु भगवान महावीर स्वामी की प्रथम देशना श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को पंच-शैलपुर राजगृह के मनोरम विपुलाचल पर्वत पर लगे समवशरण में हुई थी। समवशरण भगवान की धर्म सभा को दिया गया नाम है क्योंकि उसमें जगत के प्रत्येक प्राणी को बिना किसी भेदभाव के एक साथ बैठ कर भगवान की दिव्य ध्वनि सुनकर अपना कल्याण करने का समान अधिकार प्राप्त था। प्रथम देशना की पूर्व-संध्या को अर्थात् आषाढ़ी पूर्णिमा को उस समय के विख्यात ११ ब्राह्मण महापंडितों ने भगवान से अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर अपने विशाल शिष्य परिवार सहित भगवान का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था जिस कारण आषाढ़ी पूर्णिमा लोक में गुरु-पूर्णिमा पर्व के रूप में विख्यात हुई। ये महापंडित भगवान के गणधर, अर्थात् प्रमुख शिष्य, बने जिनमें श्री इन्द्रभूति गौतम अग्रणी थे। यह घटना वर्ष ५५७ ई. पूर्व में घटित हुई थी।

तीर्थंकर महावीर प्रभु अपने १२ वर्ष के दीर्घ एवं कठोर साधना काल में प्रायः मौन ही रहे थे। न तो उन्होंने कोई उपदेश दिया था और न ही कोई शिष्य बनाया था। उन्होंने केवलज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही अपने प्रथम शिष्य बनाए थे जिनमें ११ गणधर प्रमुख थे और तब ही उन्होंने सभी प्राणियों के कल्याणार्थ धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया था।

अनुश्रुति है कि तीर्थंकर भगवान महावीर की दिव्य देशना अर्थरूप थी जिसे गणधर देवों ने शब्दों में गुम्फित करके द्वादशांग श्रुत का रूप दिया। यही द्वादशांग जिनवाणी कहलाई। श्रुत का अवतरण हुआ। भगवान महावीर स्वामी से सहस्रों-सहस्रों वर्षों पूर्व मानव सभ्यता के ऊषा काल में जन्मे आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ पर्यन्त सभी तीर्थंकरों ने इसी प्रकार श्रेय मार्ग का उपदेश दिया था किन्तु वह अंतहीन काल-प्रवाह में लुप्त हो चुका था।

भगवान महावीर स्वामी के प्रमुख शिष्यों इन्द्रभूति गौतम आदि गणधरों द्वारा गुम्फित द्वादशांग श्रुत को सैकड़ों वर्षों तक ज्योतिर्धर आचार्यों द्वारा गुरु-शिष्य परम्परा से स्मृति पटल पर संजोए रखने का प्रयास किया गया, किन्तु वीर निर्वाण के १६२ वर्ष उपरान्त ही सम्पूर्ण श्रुत के धारक प्रज्ञावान आचार्यों की परम्परा अन्तिम

श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के साथ समाप्त हो गई तथा स्मृति-क्षीणता के कारण **द्वादशांग श्रुत** के कतिपय अंशों के एक-देश ज्ञाता आचार्य एवं मुनिराज ही विद्यमान रह गए। दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार **द्वादशांग श्रुत** के बहुभाग का *स्मृति-क्षीणता* के कारण **लोप हो गया** तथा अवशिष्ट **श्रुत** को भी भविष्य में विलुप्त हो जाने की आशंका से चिन्तित होकर श्रुत के कुछ एक-देश ज्ञाता आचार्यों ने अपने को गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त श्रुतांश को स्वतन्त्र ग्रंथों के रूप में निबद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। श्रुत-केवलियों के उपरान्त की ईसा पूर्व की **शताब्दियों** में इन श्रुतधर आचार्यों की अनुकम्पा से रचे गए महान ग्रंथों में भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य के **समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्ट पाहुड** आदि, भगवान गुणधराचार्य **कृत कषाय पाहुड**, आचार्य वट्टकेरि कृत **मूलाचार** तथा शिवार्य कृत **भगवती आराधना** दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के मूल आगम ग्रंथों में प्रमुख हैं। पर श्रुत देवी का अवतरण अभी तक नहीं हुआ माना जाता क्योंकि उन ग्रंथों की रचना तो हुई पर उनके रचना काल में उन्हें लिपिबद्ध नहीं किया गया। परम वीतरागी, परम निष्परिग्रही, सतत् परिव्राजक, दिगम्बर **जैन मुनिराज** करुणा एवं **शुचिता** के प्रतीक उपकरण मयूर-पिच्छी तथा **कमंडल के अतिरिक्त** अन्य कोई परिग्रह अपने साथ नहीं रखते थे। शास्त्रों का **ज्ञान कंठस्थ रूप में ही निर्ग्रन्थ मुनिराज** अपने साथ लेकर सतत विहार करते रहते थे।

श्रुत देवी के अवतरण का श्रेय सर्वप्रथम प्राप्त हुआ आचार्य द्वय **भगवंत पुष्पदंत** व भूतबलि को जिन्होंने अपने शिक्षा गुरू श्रुतधर आचार्य धरसेन से **द्वादशांग जिनवाणी** के बारहवें **दृष्टिवाद अंग** में समाहित **अग्रायणी पूर्व** के **चयन लब्धि अधिकार** के **कर्म प्रकृति प्राभृत** का अध्ययन करके **षट्खण्डागम** ग्रंथ की रचना की तथा उसे ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध कराकर चतुर्विध संघ ने वीर निर्वाण संवत् ६०२ अर्थात् सन् ७५ ई. की ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को इस ग्रंथ को पुस्तकारूढ़ कर इसकी पूजा की। श्रुत देवी का अवतरण हुआ। वीणा-पाणि देवी सरस्वती के जैन संस्करण ने पुस्तकधारिणी ज्ञान की देवी का रूपधारण किया तथा ज्ञान के सार्वजनिक **प्रचार-प्रसार** के **युग** का प्रारंभ हुआ। पुस्तक-धारिणी वाग्देवी की सन् १३२ ई. की एक **प्रतिमा भी मथुरा** के कंकाली टीले के उत्खनन से प्राप्त हुई है। ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी श्रुत पंचमी पर्व के रूप में विख्यात हुई।

कदाचित् यह किसी ग्रंथ के पुस्तकारूढ़ किए जाने का विश्व के सम्पूर्ण इतिहास में प्राचीनतम ऐतिहासिक उल्लेख है। श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में धर्म ग्रंथों के लिपिकरण की प्रक्रिया **षट्खंडागम ग्रंथ** की रचना एवं लिपिकरण के लगभग ४०० वर्ष बाद से ही प्रारम्भ हुई जब देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने वल्लभी नगर में श्रुतधर मुनियों के सम्मेलन में सम्पन्न हुई तीसरी आगम वाचना के आधार पर अवशिष्ट अंग सूत्रों को संकलित कर लिपिबद्ध किया था।

षट्खंडागम दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का प्रथम आगम ग्रंथ है जो लिपिबद्ध करके पुस्तकारूढ़ किया गया। श्रुत पचंमी के दिन इस सम्प्रदाय द्वारा शास्त्रों को वेदिका पर प्रतिष्ठापित कर श्रुत देवी सरस्वती की पूजा की जाती है, शास्त्र भंडारों की विशेष सार-संभाल व झाड़-पोंछ की जाती है, हस्तलिखित जीर्ण-शीर्ण पन्नों को बदला जाता है या सुरक्षित किया जाता है और हस्तलिखित शास्त्रों को नये वेष्ठनों मे बांधा जाता है। इस दिन मंदिरों के शास्त्र भंडारों को धर्मनिष्ठ श्रावक शास्त्र भेंट करने में विशेष पुण्य मानते हैं।

वस्तुतः यह श्रुत पंचमी पर्व शास्त्र भंडारों-पुस्तकालयों के प्रारंभ किए जाने का स्मृति पर्व है। दूर-दृष्टि जैन आचार्यों ने गृहस्थ धर्म में दान की महत्ता पर विशेष बल दिया था, और गृहस्थ द्वारा दिये जाने वाले औषधि, आहार व अभय दान के साथ-साथ शास्त्र दान के द्वारा विशेष पुण्य का अर्जन होना घोषित किया था तथा श्रावक के षट् आवश्यक नैत्यिक कर्मों में शास्त्र-पूजा तथा स्वाध्याय को विशेष स्थान दिया था। परिणामस्वरूप हमें मध्ययुगीन शिलालेखों से पता चलता है कि धर्मनिष्ठ राजन्य एवं श्रेष्ठि वर्ग आचार्यों, कवियों एवं विद्वानों से अनुरोध करके नवीन ग्रंथों का निर्माण कराते थे तथा ग्रंथ पूर्ण होने पर गाजे-बाजे के साथ उसकी हाथी पर शोभायात्रा निकालते थे और ग्रंथ की अनेक प्रतिलिपियां तैयार कराकर विभिन्न स्थानों के मंदिरों को भेंट स्वरूप भेजते थे। श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के एक शिलालेख से पता चलता है कि होयसल्ल सम्राट विष्णुवर्धन की पट्ट महादेवी शान्तला देवी (१०६०-११२८ ई.) ने **षट्खण्डागम ग्रंथ** को (एक लाख श्लोक प्रमाण धवल टीका सहित) ताड़ पत्रों पर उत्कीर्ण करा कर जिन मंदिरों को दान स्वरूप भेंट किया था। ग्रंथ के पत्रों पर शान्तला देवी तथा सम्राट विष्णुवर्धन के स्वर्ण चित्र भी अंकित किए गए थे। एक अन्य शिलालेख से पता चलता है कि उससे भी लगभग १०० वर्ष पूर्व चालुक्य सम्राट तैलप वाहकमल्ल के महादंडनायक श्रेष्ठि-पुत्र नागदेव की धर्म-परायण

पत्नी सती अतिमब्बे ने कन्नड़ के महाकवि पोन्न द्वारा **शान्तिनाथ पुराण** की रचना कराई तथा उसकी एक सहस्र प्रतियां ताड़पत्रों पर उत्कीर्ण कराकर विभिन्न जैन मंदिरों में वितरित कराकर **दान चिन्तामणि** का विरुद अर्जित किया था।

धर्मनिष्ठ श्रावक-**श्राविकाओं** द्वारा शास्त्र-दान का पुण्य अर्जित करने की अदम्य भावना ने मुद्रण के युग के पूर्व-काल में **श्रावक** लिपिकारों के एक वर्ग को ही जन्म दे दिया था जो स्नानादि के बाद शुद्ध वस्त्र पहन कर शुद्ध रूप से तैयार की गई स्याही से हाथ से बने कागजों पर बड़े भक्तिभाव से शास्त्रों की प्रतिलिपियां तैयार किया करते थे। इनमें से ही कालान्तर में एक-से-बढ़कर एक शास्त्र-मर्मज्ञ गृहस्थ विद्वान पैदा हुए।

मुद्रण युग प्रारम्भ होने के बाद आज भी धर्मनिष्ठ जैन श्रावकों द्वारा शास्त्र-भंडारों को शास्त्र-दान देने की प्रथा कायम है तथा जैन मंदिरों में विशाल शास्त्र-भंडार इस प्रथा के सुफल रूप में नित्य प्रति अभिवृद्धि कर रहे हैं। हमारी राज्य सरकारें भी पुस्तक अनुदान द्वारा सार्वजनिक पुस्तकालयों के पुस्तक भंडारों में सत् साहित्य की अभिवृद्धि कर प्रच्छन्न रूप से ज्ञान की देवी पुस्तक-धारिणी सरस्वती की उपासना कर रही है। हम सब मिल कर ज्ञान के प्रचार-प्रसार के पर्व को मनाएं तथा सत् साहित्य खरीद कर सत् साहित्य के स्वाध्याय का नियम लेकर वाग्देवी की उपासना करें।

(**शोधादर्श** २६, २ जुलाई, १९९५ से उद्धृत)

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।

- कवि भागचन्द्र 'भागेन्दु' कृत
महावीराष्टक स्तोत्र

TWELVE MODES OF REFLECTION

1- Life is ephemeral and death is inevitable. So, everybody, even though a mighty potentate, has to meet death some day when the turn comes.

2- When death overtakes, nobody - neither a host of followers or armed forces, nor any god or goddess, nor even mother or father or the entire family - can protect anyone.

3- The poor is miserable for want of money and the moneyed is distressed because of greed, and thus looking around we find that happiness is nowhere in this world.

4- One is born alone and when dying goes again alone, thus there is no intimate companion of anybody any time.

5- When even the body is not my own, there cannot be anything which I may call my own, and whatever family and property are seen around, are actually other than me.

6- The skeletal body wrapped with skin shines very well, but there is nothing more detestable in this world than what is contained inside under the skin.

7- The worldly beings are wandering through transmigration all the time under the spell of delusion and, therefore, they are not aware that the thieves in the form of Karma abounding around, are robbing them of the substance.

8- When True Teacher wakes us up and the deluding slumber gradually subsides, then some effort is made to stop the thieves in the form of Karma from coming.

9- After casting off delusion, we have to clean our home taking around the lamp of knowledge filled with the oil of penance or austerity, to drive out the Karma thieves which have entered the home from before.

The five major vows (non-injury, truth, non-stealing, non-possession, and chastity) and the five cares (in walking, speaking, eating and drinking, removing things, and easing out) so as not to hurt other beings even inadvertantly, enable us to conquer the five mighty sensory-perceptions (of touching, tasting, smelling, seeing, and hearing), and thus provide the weapon to shed off the Karma matter.

10- The cosmos is in the shape of a standing man, measuring from bottom to top fourteen Rajus, in which countless souls are wandering since endless time for want of true knowledge. (The concept of Loka or cosmos denotes the infiniteness of space, in relation to endlessness of time.)

11- Everything, be it money, property, gold or royal affluence, is easy to acquire, but the true knowledge is something which it is difficult to get in this world.

12- We have to test a tree to get fruits which give us happiness, and we may cry when we are upset with worry or anxiety to get relaxed, but the bountifulness of the Dharma is such that we get happiness without any such exercise. (Dharma is an all comprehensive term to denote what is true, virtuous and real in the cosmos.)

Note :-**Bhudhardas** who lived in Agra during A.D. 1693-1749, had composed in couplets the ***Barah-bhavana*** in simple Hindi. The above rendering into English seeks to convey the theme and meaning of the poet. The original Hindi Text is given below.

- Dr. Shashi Kant

भूधरदास कृत बारह भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।१।।
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरिया जीव को, कोई न राखनहार।।२।।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।३।।
आप अकेला अवतरै, मरै अकेलो होय।
यूं कबहूं इस जीव को, साथी सगा न कोय।।४।।
जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर सम्पति पर प्रकट ये, पर है परिजन लोय।।५।।
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन-गेह।।६।।
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म-चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।७।।

सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछु बनैं उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।।८।।
ज्ञान-दीप, तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विध बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार।।९।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादितै, भरमत हैं बिनु ज्ञान।।१०।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।११।।
जांचे सुर-तरु देय सुख, चिंतन चिंतारैन।
बिन जाचे बिन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन।।१२।।

◆◆◆◆◆

जय जय जिन भगवान

जड़ चेतन प्रभुमय सभी, सबमें उसका वास।
कण-कण में वह ही दिखे, श्वास-श्वास प्रतिश्वास।।
नित प्रति हम वन्दन करें, धरें उन्हीं का ध्यान।
जिनकी कृपा विशेष से, बनता जीव महान।।
किसी भांति जैनेन्द्र यदि, हो जाएं अनुकूल।
मिट जाएं तो क्लेश सब, भव-भय हों निर्मूल।।
सर्वभूत हित-साधना, जीवन का है ध्येय।
कहा आपने है यही, श्रेय-प्रेय-पाथेय।।
प्रेम-पाश में प्रभु बंधे, खिंच जाते उस ओर।
जिधर खीचंता है उन्हें, साधक भाव-विभोर।।
मेरे उर का कलुषतम, हर लें कृपानिधान।
निज चरणों की भक्ति का, दे दें शुभ वरदान।।
भजन आपका नित्य हो, पड़े नहीं व्यवधान।
रोम-रोम से हो ध्वनित, जय-जिनेन्द्र भगवान।।

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत
सारस्वत-सदन, सिविल लाइन्स, सीतापुर

भगवान महावीर का केवलज्ञान स्थल : एक पुनर्विचार

- डॉ. सागरमल जैन

[प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने श्वेताम्बर परम्परा में मान्य भगवान महावीर के जन्मस्थान और केवलज्ञान स्थल के सन्दर्भ से विवेचन प्रस्तुत किया है, तथा जन्मस्थान लछुवाड़ को ही उनका केवलज्ञान स्थल सिद्ध करने का प्रयास किया है। दिगम्बर परम्परा में ७८३ ई. में जिनसेनसूरि पुन्नाट रचित **हरिवंशपुराण** (द्वितीय सर्ग, श्लोक ५७-५८) तथा ८६६ ई. में गुणभद्र कृत **उत्तरपुराण** (पर्व ७४, श्लोक ३४८-३५०) में वैशाख शुक्ल दशमी को जृम्भिक ग्राम के निकट ऋजुकूला नदी के किनारे साल वृक्ष के नीचे शिलातल पर ध्यानस्थ विराजमान वर्धमान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त होने का उल्लेख है। भगवान महावीर को जंभियग्राम (जृम्भिकग्राम) के निकट ऋजुवालिका नदी के किनारे साल वृक्ष के नीचे केवलज्ञानप्राप्त होने की बात प्रस्तुत लेख के अनुसार श्वेताम्बर **आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध** और **कल्पसूत्र** में भी कही गई है जिसे लेखक ने अन्य प्रकार प्रतिपादित किया है। दिगम्बर मान्यता के अनुसार केवलज्ञान प्राप्ति के ६६ दिन बाद श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर भगवान का प्रथम धर्मोपदेश हुआ था।

विद्वान लेखक ने लेख में श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भगवान महावीर का प्रथम धर्मोपदेश मल्लों की राजधानी मध्यमा अपापापुरी (पावापुरी), जो उनके अनुसार लछुवाड़ से लगभग १८०-१६० कि.मी. दूर है, में दिये जाने की बात लिखी है। लेख से यह भी ध्वनित होता है कि धर्मोपदेश केवलज्ञान प्राप्ति के अगले दिन हुआ था। जहाँ तक हमारी जानकारी है, मल्लों की पावा पूर्वी उत्तर प्रदेश में वर्तमान कुशीनगर जिले के समीप रही होगी और एक रात-दिन में पैदल वहां पहुंचना कितना व्यावहारिक रहा होगा, यह विचारणीय है। जृम्भिक ग्राम (वर्तमान जमूई) से राजगृह, जो भगवान महावीर के मौसा मगधनरेश श्रेणिक बिम्बिसार की राजधानी थी, की दूरी मल्लों की अपापापुरी से अपेक्षाकृत कहीं कम रही। अतः भगवान महावीर के प्रथम धर्मोपदेश का स्थल राजगृह माना जाना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। -**रमा कान्त**]

वर्तमान में महावीर के केवलज्ञान स्थल के रूप में सम्मेदशिखर और गिरडीह के बीच तथा पालंगज के समीप 'बाराकर' को श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा महावीर का केवलज्ञान स्थल माना जाता है। पालंगज पुरातात्विक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थल है। वहां पाल.कालीन (लगभग १०वीं शताब्दी ई.) का मंदिर भी है। उसी को लक्ष्य में रखकर संभवतः वर्तमान सम्मेदशिखर को २० तीर्थंकरों के निर्वाण स्थल के रूप में तथा बाराकर को महावीर के केवलज्ञान स्थल के रूप में लगभग १६वीं शताब्दी में मान्यता दी गई। मेरी दृष्टि में, वर्तमान में जिसे श्वेताम्बर परम्परा महावीर का जन्मस्थल मान रही है, वही वस्तुतः महावीर का केवलज्ञान स्थल है। उस स्थल पर

ई. सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में भी कोई स्मारक रहा था और यह बहुत कुछ संभव है कि वह स्मारक महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति स्थल की स्मृति में ही बनाया गया हो। वर्तमान में 'बाराकर', जिसे महावीर का केवलज्ञान स्थल माना जाता है, में १६-१७ शताब्दी ई. से प्राचीन कोई पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते। जबकि जमुई क्षेत्र के अंतर्गत लछवाड़ के समीपवर्ती क्षेत्र में कम से कम ई. सन् के प्रारंभिक शताब्दियों के पुरातात्विक प्रमाण, विशेष रूप से ईंट आदि, स्वयं लेखक ने देखे हैं। **आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध** एवं **कल्पसूत्र** में महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति का जो संदर्भ उपस्थित है उसमें कहा गया है कि "जंभियग्राम नगर के बाहर ऋजुवालिका के उत्तरीय किनारे पर शामकगाथापति के काष्टकरण (काष्ठसंग्रह क्षेत्र) में 'वेयावत्त' नामक चैत्य के उत्तर-पूर्व दिशा भाग में न अति दूर और न अति निकट शालवृक्ष के नीचे उकडू होकर गोदुहासन से सूर्य की आत्पना लेते हुए उर्ध्वजानु अधोसिर धर्म-ध्यान में निरत ध्यान कोष्टक को प्राप्त शुक्ल ध्यान के अंतर्गत वर्तमान वर्धमान को निवृत्ति दिलाने वाला प्रतिपूर्ण अव्याहत निरावरण अनंत, अनुत्तर, श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ।"

सामान्यतया विद्वानों ने यह मान लिया है कि भगवान महावीर को जंभियग्राम के निकट ऋजुवालिका नदी के उत्तरीय किनारे पर शामकगाथापति के खेत में सालवृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने इसमें 'बहिया' और 'कट्ठकरणंसी' जैसे शब्दों की ओर ध्यान नहीं दिया है। वर्तमान में श्वेताम्बर परम्परा जिसे महावीर का जन्म स्थल मान रही है वह कच्चे मार्ग से वर्तमान जमुई से ७-८ कि.मी. से अधिक दूर नहीं है। इस मार्ग में ऊलाई नदी को दो-तीन बार पार करते हुए जाना पड़ता है। किन्तु यह मार्ग वस्तुतः मोटरगाड़ियों आदि के लिए नहीं है। वैसे यदि नदी के किनारे-किनारे खेतों में से यात्रा की जाय तो मेरी दृष्टि में यह मार्ग लगभग ७ कि. मी. से अधिक नहीं हैं। लेखक ने स्वयं कच्चे मार्ग से कार से इस क्षेत्र की यात्रा की है। यदि हम जंभियगाम को आधुनिक जमुई ही मानें तो भी यह स्थान वहां से एक पहाड़ को पार करने पर ७-८ कि.मी. से अधिक नहीं रह जाता है। मेरी दृष्टि में 'बहिया' का अर्थ अति निकट न समझ करके जंभियग्राम का बाह्य क्षेत्र समझना चाहिए। आज भी सामान्य रूप से किसी भी नगर के ८-१० कि.मी. के क्षेत्र को भी उसी नगर का बाह्य भाग माना जाता है। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सामान्यतया भगवान महावीर अपने साधनाकाल में किसी भी बड़े नगर के अति निकट नहीं रहते थे। 'कट्ठकरण' शब्द का जो कृषि भूमि या खेत अर्थ लगाया जाता है वह मेरी दृष्टि में उचित नहीं है। 'कट्ठकरण' का अर्थ जंगल या काष्ट संग्रह करने का क्षेत्र होता है, कृषि क्षेत्र नहीं होता है। पुनः शामक को सामान्य गृहस्थ या कृषक न मानकर गाथापति कहा गया है। गाथापति सामान्यतया नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति को ही कहा जाता है।

वस्तुतः भगवान महावीर केवलज्ञान प्राप्ति के पूर्व शामक गाथापति के वन क्षेत्र में साधना हेतु स्थित थे। अतः महावीर का केवलज्ञान स्थल वस्तुतः ऋजुवालिका नदी के उत्तरीय किनारे का शामक गाथापति का वन क्षेत्र ही था न कि कोई खेत। पुनः वहां सालवृक्षों के होने का तात्पर्य भी यही है कि वह सालवृक्षों का वन रहा होगा। अतः महावीर के केवलज्ञान स्थल को जंभिय (वर्तमान जमुई) के ऋजुवालिका (ऊलाई) नदी के उत्तरीय किनारे का वन क्षेत्र समझना चाहिए। लेखक ने लगभग १५ वर्ष पूर्व जब इस क्षेत्र की यात्रा की थी तब भी यह क्षेत्र तीन ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ वन क्षेत्र ही था। उसके अतिनिकट लेखक को किसी ग्राम आदि की अवस्थिति नहीं मिली। यदि हम 'बहिया' का अर्थ नगर का बाह्य भाग मानें तथा उस स्थल को ऋजुवालिका नदी के उत्तर किनारे पर स्थित वन क्षेत्र के रूप में स्वीकार करें तो भगवान महावीर का केवलज्ञान स्थल वही सिद्ध होता है जिसे आज श्वेताम्बर समाज महावीर का जन्म स्थल मान रहा है।

आगम में केवलज्ञान स्थल को जम्भीय ग्राम नगर का बहिर्भाग (बाहिया) कहा गया है। सामान्यतया 'बहिया' या बहिर्भाग का अर्थ निकटस्थ स्थल माना जाता है, किन्तु आगमों के अनुसार उस काल में २०-२५ किलोमीटर दूर स्थित स्थलों को भी उस नगर का बहिर्भाग ही माना जाता था। उदाहरणार्थ नालन्दा को भी राजगृह का **बहिर्भाग** (**तस्स** णं रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तर पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थणं नालन्दा नामं - **ज्ञातासूत्र** अध्याय ७ का प्रारम्भिक सूत्र) कहा गया है जबकि नालन्दा और राजगृह के बीच की दूरी लगभग २० किलोमीटर है। अतः वर्तमान लछवाड़ को जमुई (जम्भीय) का बाह्य विभाग माना जा सकता है। इस सम्बन्ध में कोई भी विप्रतिपत्ति नहीं है।

वर्तमान में श्वेताम्बर परम्परा में महावीर के जन्म स्थान के रूप में मान्य 'लछवाड़' महावीर का कैवल्य प्राप्ति का स्थान है। इसकी पुष्टि अन्य तथ्यों से भी होती है। प्रथमतः इसके समीप बहनें वाली 'ऊलाई' नामक नदी 'उजुवालिया' का ही अपभ्रंश रूप है। क्योंकि प्राकृत व्याकरण की दृष्टि से उजुवालिया का उलाई रूप संभव है।

सर्वप्रथम लोप के नियमानुसार 'ज' का लोप होने पर और व का उ होने पर तथा तीनों ह्रस्व उ का ऊ होने पर ऊलिया रूप होगा, इसमें भी ऊ+ल+इ+य+आ (ऊलइया) में इ+य का दीर्घ ई होकर आ का स्थान परिवर्तन होकर ल के साथ संयोग होने से 'ऊलाई' रूप बनता है। पुनः संस्कृत के कुछ ग्रन्थों में उजुवालिया

(ऋजुवालिका) के स्थान पर ऋजुकूला रूप भी मिलता है। प्राकृत के नियमों के अनुसार ऋ का उ, मध्यवर्ती ज का लोप होने पर जु का उ और मध्यवर्ती क का लोप होने पर कू का ऊ इस प्रकार उ+उ+ऊ+ला में दोनों ह्रस्व उ का दीर्घ ऊ में समावेश होकर ऊला रूप बनता है, जिसमें मुख सुविधा हेतु ई का आगम होकर ऊलाई रूप बनता है।

ज्ञातव्य है कि यही नदी अन्य जलधाराओं से मिलती हुई आगे चलकर जमुई के आसपास क्यूल के नाम से जानी जाती है जो कूल का अपभ्रंश रूप लगता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि ऊलाई जो जमुई नगर से आगे चलकर क्यूल के नाम से जानी जाती है ऋजुवालिका अथवा ऋजुकूला का ही अपभ्रंश रूप है। अतः नदी के नाम की दृष्टि से भी महावीर का केवल ज्ञान स्थल वर्तमान लछुवाड़ ही है। लछुवाड़ नाम भी लिछवीवाटक अर्थात् लिच्छवी का मार्ग या लक्ष्य वाट अर्थात् लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग ऐसा सिद्ध करता है। चूंकि इस प्रकार लिच्छवी महावीर का ज्ञानप्राप्ति या लक्ष्य प्राप्ति का स्थल होने से ही यह स्थल लछुवाड़ कहलाया होगा, इस सम्भावना को पूर्णतः निरस्त नहीं किया जा सकता है।

इस स्थान पर तीर्थ स्थापन नहीं होने का कारण भी स्पष्ट हैं, चूंकि आज भी यह स्थान निर्जन है उस काल में तो यह इससे भी अधिक निर्जन रहा होगा, फिर सन्ध्याकाल होते होते वहाँ कोई उपदेश सुनने को उपलब्ध हो यह भी सम्भव नहीं था। साथ ही इस क्षेत्र में महावीर के परिचितजनों का भी अभाव था अतः भगवान महावीर ने यह निर्णय किया होगा कि जहां उनके जातिजन या परिचितजन रहते हों ऐसी मध्यमा अपापापुरी (पावापुरी) में जाकर प्रथम उपदेश देना उचित होगा। ज्ञातव्य है कि आगमिक व्याख्याओं में लछुवाड़ से मध्यदेश में स्थित मल्लों की राजधानी पावा की दूरी १२ योजन बताई गई, जो लगभग सही प्रतीत होती है। वर्तमान में भी लछुवाड़ से उसमानपुर-वीरभारी के निकटवर्ती स्थल को पावा मानने पर ऋजु या सीधे मार्ग से वह दूरी लगभग १६० किलोमीटर होती है। १५ किलोमीटर का एक योजन मानने पर यह दूरी १८० किलोमीटर होती है। ज्ञातव्य है **जैनेन्द्रसिद्धान्त कोश** में एक योजन ६.०६ मील बताया है, इस आधार पर १ योजन लगभग १५ किलोमीटर का होता है। नक्शे में हमने इसे स्केल से मापकर भी देखा है जो लगभग सही है। इस प्रकार हमारी दृष्टि में महावीर का केवलज्ञान प्राप्ति का स्थल जमुई के निकटवर्ती क्षेत्र लछुवाड़ ही है, वर्तमान बाराकर या जमुई नहीं हैं।

- ३५, ओसवाल सेरी, सागर टेन्ट हाउस,
नई सड़क, शाजापुर-४६०००१

धन और धर्म

- डॉ. धर्मचन्द जैन

मनुष्य के भौतिक जीवन के लिए धन एवं नैतिक-आध्यात्मिक जीवन के लिए धर्म आवश्यक है। धन के द्वारा भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि, उपकरण, वाहन आदि की प्राप्ति होती है, जो मानव के जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है तथा धर्म उसके नैतिक मनोबल एवं आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा करता है और उनमें वृद्धि करता है। धन जहाँ सुविधाओं का साधन है वहाँ धर्म शान्ति, संतोष एवं सच्चे आनन्द का स्रोत है।

धन और धर्म के द्वन्द्व को लेकर विवाद होता रहता है। कई लोग कहते हैं कि धन होगा तो धर्म होगा, धन नहीं तो धर्म नहीं। कई लोग धर्म से धन की प्राप्ति स्वीकार करते हैं। कई इन दोनों को परस्पर विरोधी मानते हैं तथा कुछ इनको परस्पर पूरक अंगीकार करते हैं।

मनुष्य की प्रवृत्ति का आकलन किया जाय तो वह धन के प्रति जितना आकर्षित होता है, उतना धर्म के प्रति नहीं। धन उसे अपनी सुरक्षा का साधन प्रतीत होता है। धर्म को यदि धन-प्राप्ति का हेतु या आधार बता दिया जाय तो वह धन के लक्ष्य से धर्माचरण करने के लिए भी तत्पर हो जाता है। हनुमानजी के मन्दिर में प्रतिदिन जाने वाले कई भक्त इस प्रकार की श्रेणी में आते हैं। नाकोड़ा पार्श्वनाथ के मन्दिर में भी ऐसे श्रद्धालुओं की कमी नहीं। वहाँ अन्य भौतिक इच्छाओं की पूर्ति को भी लक्ष्य बनाया जाता है, किन्तु विचार का अभी मुख्य बिन्दु धन है। धन एक साधन है, जिससे भूमि, भवन, आभूषण, वाहन, भोजन, वस्त्र आदि क्रय किए जा सकते हैं। धन से विवाह, जन्मोत्सव आदि के समारोह बड़ी शान-शौकत से आयोजित किए जाते हैं। धन है तो शोहरत है, प्रतिष्ठा है। लोग धन से प्रभावित होकर धनिक के दोषों को गौण कर देते हैं तथा उसे प्रतिष्ठा एवं सम्मान देते हैं। धन की संसार में जो प्रतिष्ठा है, उसको देखकर ही किसी कवि ने कहा है-

टका धर्मः टका कर्म, टकैव परमं सुखम्।
यस्य पार्श्वे टका नास्ति, हाटके टकटकायते।

टका (धन) ही धर्म है, टका ही कर्म, टका ही परम सुख है। जिसके पास टका नहीं है, वह बाजार में मात्र देखता रह जाता है। इस श्लोक में धन को लेकर अतिश्योक्ति की गई है। तथापि अनादिकाल से ही धन के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। वेदों में धन एवं समृद्धि की याचना कई बार की गई है।

धन का अर्जन मनुष्य की जिजीविषा से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य जीना चाहता है। जीने के लिए उसे आवश्यक साधन जुटाने हेतु धन की आवश्यकता होती

है। जीवन को सुरक्षित करने के लिए अर्जन की प्रवृत्ति धीरे-धीरे सामाजिक मान-प्रतिष्ठा और असीमित भोगोपभोग की सामग्री से जुड़ जाती है। यही लोभ मनुष्य को संसार के मायाजाल में फंसा देता है। धन का सबंध सामूहिक कार्यों, उत्सवों आदि से जुड़ा हुआ है। धन के महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हुए गुणों को गौण कर दिया गया तथा सभी गुणों को धन के आश्रित बता दिया गया- 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति।' सारे गुण जब धन के आश्रित बता दिए गए तो फिर लोग धन के पीछे क्यों न बावले हों ?

धर्म की ओर आकर्षण दूसरे नम्बर पर आता है। जब व्यक्ति संसार से उद्विग्न हो जाता है तब धर्म की शरण में आता है। कभी सत्संग के द्वारा वीतरागवाणी सुनकर भी धर्म को ओर आकर्षित होता है। कभी धन आदि के प्रलोभन से भी व्यक्ति धर्म की ओर प्रवृत्त होता है। धार्मिक जनों का अध्ययन किया जाय तो उनकी मनः स्थिति भिन्न-भिन्न प्रकार की मिलती है। कोई समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्पर्क वृद्धि के लिए भी धर्मस्थानों पर पहुंचते हैं। ऐसे लोग तो अंगुलियों पर गिनने योग्य होते हैं जो धर्म को आध्यात्मिक एवं नैतिक उन्नयन का साधन बनाते हैं। कई लोग तो लोक-लाज से धर्म क्रिया करते हैं और कई दूसरों की प्रेरणा से इस ओर प्रवृत्त होते हैं।

धर्म-क्रिया किसी भी कारण से प्रारम्भ की हो, किन्तु स्वाध्याय एवं सत्संग के प्रभाव से यदि धर्म का सच्चा स्वरूप समझ में आ जाय एवं वह अपनी चेतना को निर्मलता की ओर अग्रसर कर सके तो धर्म का वह आचरण भी सार्थक हो जाता है। किन्तु धर्मस्थानों में आकर भी यदि भौतिक आकांक्षाओं की पूर्ति या धन-प्राप्ति को ही लक्ष्य में रखा तो वह धर्म का आराधन धन का ही आराधन हो जाता है। धर्म के वे आराधक विरल हैं जो भौतिक धन-सम्पदा को ठुकराकर अथवा महत्त्वहीन या अनुपयोगी समझकर धर्म के मार्ग में प्रवृत्त होते हैं।

जब पर्याप्त धन कमा लेंगे तब धर्म-क्रिया करेंगे, यह समझना अपने को धोखा देना है। धर्म को कभी भी आचरण में लाया जा सकता है। नैतिकता, प्रामाणिकता एवं मन की निर्मलता के साथ प्रवृत्ति करने में धन की अपर्याप्तता बाधक नहीं, अपनी कमजोरी ही बाधक बनती है। धर्माचरण में धन सहायक बन सकता है, किन्तु धन के प्रति आसक्ति एवं लोभ धर्माचरण को अवरुद्ध करते हैं। धन और धर्म परस्पर विरोधी तो नहीं, किन्तु जीवन में धर्म उतर जाने पर धन गौण हो जाता है। तब धन का अर्जन एवं उपयोग किया जा सकता है, किन्तु वह व्यक्ति को बांध नहीं पाता। धन एवं धर्म का इतना संबंध अवश्य है कि निष्काम भाव से प्रदत्त या विसर्जित धन धर्म में सहायक बन सकता है, और निष्काम भाव से किया गया धर्म कदाचित् बाह्य प्रतिकूलताओं का निराकरण करने में सहायभूत बन जाता है।

प्रश्न यह है कि क्या धर्म का आचरण बिना धन के संभव है ? उत्तर में कहना होगा कि धर्म के शुद्धाचरण के लिए धन की कहीं भी कोई आवश्यकता नहीं है। हम जितना अधिक धर्म को धन से जोड़ते हैं, उतनी ही धर्म में विकृति आती है। धर्म के आचरण हेतु मनुष्य को तीन साधन प्राप्त हैं - १. मन, २. वचन और ३. काया। मन से शुभ चिन्तन करना, सबका भला चाहना, उसे राग-द्वेष से रहित बनाना - इसमें धन की कहां आवश्यकता है। इसी प्रकार वचन से निरवद्य भाषा का प्रयोग करने में कहां धन की जरूरत है। काया या शरीर से भी सद्प्रवृत्तियों में लगना - सामायिक, दया, पौषध, उपवास आदि करने में भी कहां धन की जरूरत है। धर्म के सदाचरण में धन की आवश्यकता नहीं। स्थानकवासी जैन धर्म के लिए तो कहावत भी है - 'पैसो लगे न टको, ढूंढियों धर्म पक्को।' इस प्रकार धर्म का आचरण निर्धन एवं साधनहीन व्यक्ति भी कर सकते हैं।

दूसरा प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि क्या कोई व्यक्ति ऐसा भी हो सकता है जो धार्मिक भी हो और अपने पास विद्यमान धन से किंचित् भी आसक्ति कम न करता हो? धर्म तो आसक्ति को तोड़ता है। इसलिए जिसे जो सामग्री या धन आवश्यकता से अधिक प्राप्त है, धार्मिक व्यक्ति उसमें से कुछ अंश धर्म-प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने में लगायेगा ही, क्योंकि धर्म ही शरणभूत है। शान्ति, सुरक्षा एवं आत्म-उन्नयन का सच्चा साधन धर्म ही है। धर्म-प्रवृत्तियों के प्रोत्साहन में स्वाध्याय हेतु पुस्तकों का प्रकाशन, पुस्तकालयों एवं धर्मस्थानों का निर्माण आदि कार्य सम्मिलित हैं।

धन यदि धर्म का सहयोगी बन जाए तो वह व्यक्ति के लिए अशान्ति का कारण नहीं होता। परन्तु यदि धर्म भी धन के लक्ष्य से किया जाय तो वह भी अशान्ति का कारण बन जाता है। धर्म से आत्म-शुद्धि की उपलब्धि ही प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए, धन तो अनाज के साथ भूसे की तरह स्वतः प्राप्त होता रहता है।

धन का जीवन में मूल्य है, किन्तु धर्म उससे भी बढ़कर मूल्यवान है। धन जहाँ भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है वहाँ धर्म से नैतिक व आध्यात्मिक उन्नयन तो होता ही है, भौतिक इच्छाओं पर संयम होने से जीवन सुखी व शान्त बनता है। उससे कदाचित् भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती हो, किन्तु धर्म को उसका लक्ष्य नहीं बनाना चाहिये। जहाँ तक हो, धर्म से दूसरों को भी जोड़कर उन्हें आत्मिक विकास एवं शान्ति का अनुभव कराने में सहायक बनना चाहिए तथा आसक्ति कम करते हुए अपनी प्राप्त सामग्री का उपयोग धर्म की अभिवृद्धि में करना चाहिए।

- ३ क २४-२५, कुडी भगतासिनी हाउसिंग बोर्ड, जोधपुर-३४२००५ (राज.)

संस्कृत पुराणों में बाहुबली कथा

- डॉ. रमेशचन्द्र जैन

संस्कृत के जैन पुराणों में **पद्मपुराण** का प्रथम स्थान है। आचार्य रविषेण ने बाहुबली कथानक अत्यन्त संक्षेप रूप में दिया है। तदनुसार पोदनपुर में बाहुबली राजा रहता था। वह भरत के प्रतिकूल रहता था तथा "मैं और भरत एक ही पिता के पुत्र हैं" इस मान कषाय से ग्रस्त रहता था? चक्र के अहंकार से पूर्ण चक्रवर्ती भरत अपनी सेना द्वारा पृथ्वी तल को आच्छादित करता हुआ युद्ध करने के लिए पोदनपुर गया। भुजाओं के बल से सुशोभित बाहुबली ने हँसकर भरत से कहा कि युद्ध में निरपराध दीन प्राणियों के वध से हमारा और आपका क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है? बाहुबली के कथन से दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध हुआ, जिसमें भरत हार गए। अन्त में भरत ने भाई का वध करने के लिए चक्ररत्न चलाया, परन्तु बाहुबली चरमशरीरी थे। अतः वह चक्ररत्न उनका वध करने में असमर्थ रहा और निष्फल हो लौटकर भरत के समीप वापिस आ गया। भाई के साथ वैर का मूल कारण जानकर उदारचेता बाहुबली भोगों से अत्यन्त विरक्त हो गए। उन्होंने उसी समय समस्त भोगों का त्यागकर वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिए और एक वर्ष तक मेरु के समान निष्कम्प खड़े रहकर प्रतिमायोग धारण किया। उनके पास अनेक बामियाँ लग गईं, जिनके बिलों से निकले हुए बड़े-बड़े साँपों और श्यामा आदि लताओं ने उन्हें वेष्टित कर लिया। इस दशा में उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। आयुकर्म का क्षय होने पर उन्होंने मोक्ष पद प्राप्त किया और इस अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम उन्होंने मोक्षमार्ग विशुद्ध किया। भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्र थे जो एक से एक बढ़कर तेज और कान्ति से सहित थे तथा जो अन्त में श्रमण पद धारण कर परम पद को प्राप्त हुए थे।

हरिवंशपुराण में आचार्य जिनसेन पुन्नाट ने भरत-बाहुबली युद्ध की भूमिका भी दी है, जिसके अनुसार जब सुदर्शन चक्र ने अयोध्या में प्रवेश नहीं किया, तब भरत ने सन्देहयुक्त हो बुद्धिसागर पुरोहित से पूछा कि समस्त भरत क्षेत्र को वश में कर लेने पर भी यह दिव्य चक्ररत्न अयोध्या में प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है? पुरोहित ने कहा कि आपके जो महाबलवान भाई हैं, वे आपकी आज्ञा नहीं सुनते हैं। यह सुनकर भरत ने शीघ्र ही उनके पास साम, दाम आदि नीति के साथ दूत भेजे। विरक्त होकर

बाहुबली के अतिरिक्त सभी भाइयों ने राज्य त्याग दीक्षा धारण कर ली। पिता भगवान वृषभदेव के द्वारा दिए हुए विभिन्न देशों को मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले भरत के उन छोटे भाइयों ने स्त्रियों के समान छोड़ दिया, साथ ही उन्होंने आज्ञाकारी सेवकों का भी परित्याग कर दिया।

हरिवंशपुराण के अनुसार भरत और बाहुबली के मन्त्रियों ने परस्पर सलाह कर कहा कि देशवासियों का क्षय न हो, इसलिए दोनों राजाओं में धर्मयुद्ध हो। भरत और बाहुबली ने मन्त्रियों की सलाह मानकर दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध किया। इन युद्धों में भरत हार गए। अनन्तर भरत ने क्रोध में आकर सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। वह चक्र चरमोत्तम शरीर के धारक बाहुबली को मारने में असमर्थ रहा। अतः तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वापिस आ गया। यह देखकर बाहुबली को वैराग्य हो गया। वे राज्य का परित्याग कर तप करने लगे और कैलाश पर्वत पर एक वर्ष का प्रतिमा योग लेकर निश्चल खड़े हो गए। उनके चरण बामी के बिलों से निकले हुए सर्पों से सुशोभित होने लगे। माधवीलता उनके शरीर का आलिंगन करती थी। दो विद्याधारियाँ उनके शरीर पर लिपटी हुई लता को दूर करती रहती थीं। अनन्तर भरत ने आकर जिन्हें नमस्कार किया था, ऐसे बाहुबली मुनिराज कषायों का अन्त कर केवलज्ञान प्राप्त कर वृषभदेव के समवसरण में पहुँच गए।

आदिपुराण में आचार्य जिनसेन ने बाहुबली का वर्णन पैंतीसवें और छत्तीसवें पर्व में किया है। यह वर्णन पूर्ववर्ती पुराणकारों की अपेक्षा विस्तृत है। आदिपुराणकार ने दोनों ओर की सेनाओं का प्रयोग दिखलाया है, युद्ध नहीं दिखलाया है। युद्ध की ओर से मन्त्री विचार करते हैं कि दोनों ही चरमशरीरी हैं, इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी। अतः जलयुद्धं, दृष्टियुद्ध में जो विजय प्राप्त करेगा वही विजयलक्ष्मी का स्वामी होगा। दोनों ने मन्त्रियों का परामर्श स्वीकार कर लिया। शेष मूलकथा पूर्ववर्ती पुराणकारों के समान है।

बाहुबली के द्वारा स्वयं दृष्टियुद्ध, मुष्टियुद्ध का प्रस्ताव रखने का वर्णन विमलसूरिकृत **पउमचरिय** में भी आया है। इसका अनुसरण **पद्मचरित** में हुआ है। अन्य पुराणकार यह परामर्श दोनों ओर के मन्त्रियों के माध्यम से देते हैं। चक्र चलाने पर **वसुदेवहिण्डी** में संघदास गणि के वर्णनानुसार बाहुबली कहते हैं कि तुम लोकोत्तम पुत्र होकर भी यदि मर्यादा का अतिक्रमण करोगे तो फिर जन कहाँ जाएँगे? यह तो विषय-लोलुपता है।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार बाहुबली बहली के राजा थे। यह तक्षशिला के समीप था। प्राकृत ग्रन्थों में उल्लेख है कि बाहुबली भगवान् ऋषभदेव से दीक्षा लेने नहीं गए, क्योंकि उन्हें पूर्व में दीक्षित अपने ही छोटे भाई मुनियों को प्रणाम करना होगा। इस मान के काँटे ने बाहुबली को केवलज्ञान नहीं होने दिया। श्वेताम्बर जैन साहित्य में कहीं-कहीं यह भी उल्लेख है कि बाहुबली के मन में शल्य थी कि मैं भरत की भूमि पर खड़ा हुआ हूँ। भगवान ऋषभदेव की प्रेरणा से ब्राह्मी और सुन्दरी बाहुबली को उद्बोधित करने हेतु जाती हैं और जाकर कहती हैं कि हे भाई (मान रूपी) हाथी पर से नीचे उतरो, हाथी पर चढ़े हुए केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। आर्यिका ज्ञानमती माताजी ने शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह बात सिद्ध की है कि तपःकाल में बाहुबली के मन में शल्य नहीं थी। इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने **आदिपुराण** का उद्धरण भी दिया है, जो इस प्रकार है-

गौरवैस्त्रिभिरुन्मुक्तः परां निःशल्यतां गतः।

बाहुबली की तेजस्विता और स्वाभिमान - भरत चक्रवर्ती द्वारा भेजे हुए दूत के उत्तर में बाहुबली कहते हैं - "हे दूत! प्रेम और विनय ये दोनों परस्पर मिले हुए कुटुम्बी लोगों में ही सम्भव हो सकते हैं। यदि उन्हीं कुटुम्बियों में विरोध हो जाये तो दोनों ही की गति नष्ट हो जाती। बड़ा भाई नमस्कार करने योग्य है, यह बात अन्य समय में हमेशा अच्छी तरह हो सकती है, किन्तु जिसने मस्तक पर तलवार रख छोड़ी है, उसको प्रणाम करना कौन-सी रीति है? हे दूत ! दूसरे के अहंकार के अनुसार प्रवृत्ति करने से हमारा चित्त दुःखी होता है; क्योंकि संसार में एक सूर्य ही तेजस्वी है।

भरत बालकों के समान छल से हम लोगों को बुलाकर और प्रणाम कराकर कुछ पृथ्वी देना चाहता है तो उसका दिया हुआ पृथ्वी का टुकड़ा खली के समान तुच्छ ज्ञात होता है। तेजस्वी मनुष्यों के लिए जो कुछ थोड़ा-बहुत अपनी भुजा रूपी वृक्ष का फल प्राप्त होता है, वही प्रशंसनीय है; उनके लिए दूसरे की भौंह रूपी लता का फल अर्थात् भौंह के इशारे से प्राप्त चार समुद्र पृथ्वी का ऐश्वर्य भी प्रशंसनीय नहीं है -

स्वदोर्द्रुमफलं श्लाघ्यं यत्किंचन मनस्विनाम्।
न चातुरुतमैश्वर्य परभ्रूलतिका फलम्।।

- (**आदिपुराण** ३५/११२)

जिस प्रकार पनया साँप 'सर्प' शब्द को निरर्थक करता है, उसी प्रकार जो मनुष्य राजा होकर भी दूसरे की आज्ञा से उपहत हुई लक्ष्मी को धारण करता है, वह 'राजा'

शब्द को निरर्थक करता है। जो पुरुष राजा होकर भी दूसरे के अपमान से मलिन हुई विभूति को धारण करता है, निश्चय से उस मनुष्य रूपी पशु के लिए यह राज्य सम्पदा भार के समान है। जिसके दाँत टूट गए हैं, ऐसे हाथी के समान जो पुरुष मानभंग होने पर प्राप्त हुए भोगोपभोग से प्राण धारण करता है, उस पुरुष में और पशु में भेद कैसे हो सकता है? हे दूत! पिता द्वारा दी हुई यह हमारे ही कुल की पृथ्वी भरत के लिए भाई की स्त्री के समान है। अब वह उसे ही लेना चाहता है, सो तेरे ऐसे स्वामी को क्या लज्जा नहीं आती है?"

पूज्य पुरुष के प्रति विनय - बाहुबली अपने बड़े भाई के प्रति विनयभाव धारण करते थे, यह इसी घटना से स्पष्ट है कि जब उनका भरत के साथ मल्लयुद्ध हुआ तो उन्होंने भरत क्षेत्र को जीतने वाले भरत को जीतकर भी 'ये बड़े हैं' इसी गौरव से उन्हें पृथ्वी पर नहीं गिराया, किन्तु भुजाओं से पकड़कर ऊँचा उठाकर कन्धे पर धारण कर लिया।

बाहुबली का वैराग्य- जिस समय भरत ने बाहुबली पर चक्र चलाया और चक्र से बाहुबली का घात नहीं हुआ, उस समय बाहुबली का मन वैराग्य से भर गया। वे भाई के साथ वैर का मूल कारण जानकर भोगों से विरक्त हो विचार करने लगे। "यह साम्राज्य फल काल में बहुत दुःख देने वाला है और क्षणभंगुर है, इसलिए इसे धिक्कार हो। जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री एक पति को छोड़कर अन्य पति के पास चली जाती हे, उसी प्रकार यह साम्राज्य भी एक पति को छोड़कर अन्य पति के पास चला जाता है। यह राज्य प्राणियों को छोड़ देता है, परन्तु अविवेकी प्राणी इसे नहीं छोड़ते हैं, यह दुःख की बात है। विष खा लेना अच्छा है, क्योंकि वह एक भव में प्राणी को मारता है अथवा नहीं भी मारता है, परन्तु विषय सेवन करना अच्छा नहीं है, क्योंकि विषय प्राणियों को अनन्त बार पुनः-पुनः मारते हैं। जिसके बल का सहारा मनुष्यों के जीवन का अवलम्बन है, ऐसा यह आयुरूपी खम्भा कालरूपी दुष्ट हाथी के द्वारा जबर्दस्ती उखाड़ दिया जाता है। यह शरीर का बल हाथी के कान के समान चंचल है और यह जीर्ण-शीर्ण शरीर रूपी झोंपड़ा रोग रूपी चूहों के द्वारा नष्ट किया हुआ है। मैंने जो अपराध किया है उसे क्षमा कर दीजिए। मैंने अपनी विनय नहीं की, इसे मैं अपनी चंचलता ही समझता हूँ। अब हम कण्टक रहित तप रूपी लक्ष्मी को अपने अधीन करना चाहते हैं। इसलिए यह राज्यलक्ष्मी हम लोगों के लिए विष के काँटों की श्रेणी के समान सर्वथा त्याज्य है।" इस प्रकार बाहुबली ने अपने पुत्र

महाबली को राज्यलक्ष्मी सौंप दी और स्वयं गुरुदेव के चरणों की आराधना करते हुए जैन दीक्षा धारण कर ली।

बाहुबली का तपोमय जीवन – बाहुबली के उग्र तपोमय जीवन का आदिपुराणकार जिनसेनाचार्य ने विस्तृत वर्णन **३६वें** पर्व में किया है, जिसके महत्त्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं -

● उन्होंने एक वर्ष तक प्रतिमायोग धारण किया। ● वे बाहुबली वामी से निकलते हुए सर्पों से बहुत ही भयानक हो रहे थे। ● कन्धों पर्यन्त लटकती हुई केशरूपी लताओं को धारण करने वाले वे अनेक सर्पों के समूह को धारण करने वाले हरिचन्दन वृक्ष का अनुकरण कर रहे थे। ● जिसके कोंपल पत्ते विद्यार्थियों ने तोड़ लिये थे, ऐसी वासन्ती लता उनके चरणों पर पड़कर सूख गई थी। ● तप से उनका शरीर ही नहीं सूख गया था, किन्तु दुःख देने वाले कर्म भी सूख गए थे। ● उन्होंने नाग्न्य व्रत को धारण किया था। ● वे रति-अरति इन दोनों परीषहों को सहन करते थे। अन्य परीषहों को भी वे निरन्तर सहन करते थे। ● उन्होंने क्षमा से क्रोध को, अहंकार के त्याग से मान को, सरलता से माया को और सन्तोष से लोभ को जीत लिया था। ● उन्होंने काम पर विजय पायी थी। ● उन्होंने आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञाओं को नष्ट किया था। ● वे अट्ठाईस मूलगुण और ८४ लाख उत्तरगुणों का पालन करने का प्रयत्न करते थे। ● वे रस गौरव, शब्द गौरव और ऋद्धि गौरव सहित थे, अत्यन्त निःशल्य थे और दश धर्मों के द्वारा उन्हें मोक्षमार्ग में दृढ़ता प्राप्त हो गयी थी। ● उन्होंने तीन गुप्तियों और पाँच समितियों को धारण किया था। ● वे कभी विकथा नहीं करते थे। पाँच इन्द्रिय और मन को वश में करते थे। ● उन्हें तरह-तरह की ऋद्धियाँ प्रकट हो गयी थी। ● वे बारह भावनाओं का चिन्तन करते थे। ● उनके चरणों में विरोधी प्राणी अपने विरोध को भूल जाते थे। ● उन मुनिराज के तप के प्रभाव से वन का आश्रम ऐसा शान्त हो गया था कि यहाँ के किसी भी जीव को किसी के द्वारा कुछ भी उपद्रव नहीं होता था। ● एक वर्ष का उपवास समाप्त होने पर भरतेश्वर ने आकर जिनकी पूजा की है, ऐसे महामुनि बाहुबली कभी नष्ट नहीं होने वाली केवलज्ञान रूपी उत्कृष्ट ज्योति को प्राप्त हुए।

इस प्रकार बाहुबली की उत्कृष्ट तपश्चर्या और आध्यात्मिक वैभव का जिनसेनाचार्य ने **आदिपुराण** में प्रकृष्ट वर्णन किया है, जो अत्यन्त मनोहारी और प्रेरणास्पद है।

– जैन मन्दिर के निकट, बिजनौर- २४६७०१

आदिपुराण में वर्णित वर्ण और जातियां

- प्रो. (डॉ.) ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'

आदिपुराण के अनुसार अवसर्पिणी काल के तीसरे सुषमा-दुषमा काल के अंत में कल्पवृक्ष मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो गये, जिससे आजीविका की तलाश में लोग इधर-उधर भटकने लगे। भटकते हुए लोग अन्तिम कुलकर नाभिराय को साथ लेकर ऋषभदेव के पास गये और उन्हें अपनी भूख-प्यास आदि की समस्या बताई। ऋषभदेव ने उनसे कहा कि अब जीविकोपार्जन कर्म के द्वारा ही संभव है। सबको परिश्रम करके अपने कष्टों का निवारण करना होगा। तदनन्तर प्रजापति ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छह कर्म बतलाये। इनकी सहायता से लोगों की आजीविका चलने लगी। कर्माधृत समाज व्यवस्था में असमान बल-बुद्धि के लोग पैदा हुए, इससे छोटे-बड़े, शक्तिशाली और शक्तिहीन का भेद दिखने लगा। उक्त विषमता को व्यवस्थित करने हेतु एक सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था अपेक्षित हुई। उसी को ध्यान में रखकर ऋषभदेव ने कर्माधारित वर्ण-व्यवस्था (जाति व्यवस्था) को जन्म दिया और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये तीन वर्ण स्थापित किये। बाद में राजर्षि भरत चक्रवर्ती ने उक्त तीनों वर्ण के लोगों की परीक्षा करके उनमें से सदाचारी जनों का चौथा वर्ण ब्राह्मण बना दिया।

आचार्य जिनसेन ने जाति नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली मनुष्य जाति एक ही बतलाई है, किन्तु आजीविका-भेद से वह चार प्रकार की हो गई है। मनुष्य व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक धनार्जन से वैश्य और नीच वृत्ति के आश्रय से शूद्र कहा जाता है।[1] यहाँ इन चारों वर्णों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है -

क्षत्रिय

भगवान् ऋषभदेव ने अपनी दोनों भुजाओं में शस्त्र धारण करके लोगों को बताया कि जो इस प्रकार शस्त्र धारण कर शक्तिशाली जनों (दुष्टों) से प्रजा की रक्षा करेंगे और शस्त्र से ही अपनी आजीविका करेंगे, उन्हें क्षत्रिय कहा जायेगा।[2] इस प्रकार शक्ति सम्पन्न और बलवान् लोगों को प्रजा की रक्षा में नियुक्त कर उन्हें क्षत्रिय नाम दिया।

क्षत्रिय वर्ण की सृष्टि करने के बाद ऋषभदेव ने प्रजा के योग-क्षेम के लिए हा, मा और धिक् इन तीन दण्डों का विधान बतलाया। दण्डविधान लागू करने के लिए राजा की आवश्यकता हुई। क्योंकि राजा ही अपने पराक्रम से दुष्टों का निग्रह और सज्जनों का पालन कर सकता है। इसलिए उन्होंने हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महाभाग्यशाली क्षत्रियों को महामाण्डलिक राजा बनाया और राज्य संचालन के निमित्त प्रजा से कर (टैक्स) वसूल करने का विधान किया। यहाँ यह भी कहा कि प्रजा से उतना ही अंश कर के रूप में लिया जाय, जिसके कारण उसे (प्रजा को) कष्ट का अनुभव न हो।

राजर्षि चक्रवर्ती भरत ने राजपुत्रों के लिए आन्वीक्षिकी, वार्ता, त्रयी, और दण्डनीति इन चार राजविद्याओं का उपदेश दिया और आगे कहा- 'क्षत्रियों, तुम्हारा धर्म पांच भेद वाला है-- १. कुलपालन २. बुद्धिपालन ३. आत्मरक्षा ४. प्रजापालन और ५. समंजसत्व।' अपने कुलाम्नाय की रक्षा करना तथा कुल योग्य आचरण करना, कुलपालन है। क्षत्रियों को रत्नत्रय के प्रताप से उत्पन्न और अयोनिज भी कहा गया है। इतर वर्ण के लोग भी दीक्षापूर्वक सम्यक् चारित्र धारण करते हैं तो वे भी क्षत्रिय हो जाते हैं। रत्नत्रय के अधीन मुनि भी राजाओं के समान क्षत्रिय माने जाते हैं। विवेकपूर्वक अपनी बुद्धि को जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे गये तत्वों में स्थिर रखना, बुद्धिपालन नामक दूसरा धर्म है। क्षत्रियों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी जागृत बुद्धि को अन्य मार्गों (मिथ्यामार्गों) से हटाकर समीचीन (जिन) मार्ग में लगाते हुए उसकी रक्षा करें। इस लोक और परलोक संबंधी अपायों से अपनी रक्षा करना, आत्म रक्षा या आत्मा का पालन कहलाता है। विष और शस्त्र आदि से रक्षा करना, इहलोक सम्बन्धी आत्मरक्षा है तथा अपायों से रक्षा हेतु निरन्तर धर्म में प्रवृत्ति रखना, परलोक संबंधी आत्मरक्षा है। प्रजा की रक्षा करना क्षत्रियों का प्रजापालन नामक धर्म है। कृषि कराना, पशुपालन (गाय) आदि कार्यों द्वारा देश और प्रजा को समृद्ध बनाना भी राजा का ही कर्त्तव्य है। अक्षरम्लेच्छ से प्रजा की रक्षा करना भी प्रजापालन में समाहित है। ये अक्षरम्लेच्छ प्रजा को मिथ्यामतों से प्रभवित करते हैं तथा सन्मार्ग से च्युत करते हैं। हिंसादि पापों में संलग्न दुष्टों का निग्रह करना तथा क्षमा आदि गुणों द्वारा धर्म का पालन करने वाले शिष्ट-जनों का पालन करना क्षत्रियों का समंजसत्व धर्म है। दुष्ट और मित्र तथा शत्रु और पुत्र में भी पक्षपात रहित समान आचरण समंजसत्व है। प्रजा के प्रति न्यायवृत्ति रखना क्षत्रियों का प्रमुख एवं योग्य आचरण है। धर्म का

उल्लंघन किये बिना धन कमाना, उसकी रक्षा करना, उसमें वृद्धि करना और सत्पात्र को उसका दान करना, क्षत्रियों का न्याय है।

वैश्य

जो मनुष्य कृषि, व्यापार, पशुपालन द्वारा न्यायपूर्वक धन अर्जित करके अपनी आजीविका करते थे, वे सब वैश्य कहलाये। भगवान ऋषभदेव ने अपने उरुजों से यात्रा दिखलाकर वैश्यों की रचना की, क्योंकि जल, थल आदि दूर-देशों की यात्रा करके व्यापार करना उन लोगों की मुख्य आजीविका है।[३] इस प्रकार प्रजा की सुख-सुविधा हेतु देश-देशान्तर की यात्रा करके व्यापार द्वारा लोगों को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करना, वैश्यों का कार्य है। देश की समृद्धि में वैश्यों की प्रमुख भूमिका होती है। ४२ वें पर्व में कहा गया है कि राज्य के अधीन समस्त भूमि में किसानों को साधन सुलभ करवाकर खेती करायी जाये और किसानों से उचित अंश लेकर राज्य में धान्य-संग्रह किया जाये। इससे राजा के यहाँ प्रभूत सम्पत्ति इकट्ठी हो जायेगी, जिससे राजा और राज्य का बल बढ़ेगा। यहाँ गोपालक का उदाहरण सहित उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय गोपालन का व्यवसाय बहुत प्रसिद्ध था।

शूद्र

क्षत्रिय और वैश्य वर्ण को व्यवस्थित करने के बाद भगवान ऋषभदेव ने हमेशा नीच वृत्ति में लगे रहने वाले तथा नीच वृत्ति से ही आजीविका करने वाले और उत्तम वर्णों की सेवा-सुश्रुषा करने वाले शूद्र वर्ण की रचना की थी। शूद्रों की रचना भी पैरों से ही बतलाई गई है। अनेक प्रकार के सेवा कार्यों द्वारा उत्तम वर्णों की सेवा से जीवन-यापन करने वाले लोग शूद्र कहलाये।[४] वे कारू और अकारू के भेद से दो प्रकार के हैं। धोबी आदि को कारू कहा गया है तथा उनसे भिन्न को अकारू। पुनः कारू भी स्पृश्य और अस्पृश्य के भेद से दो प्रकार के बतलाये हैं। उनमें से नाई आदि को स्पृश्य तथा प्रजा से बाहर रहने वालों को अस्पृश्य बताया गया है।[५]

दीक्षा के अयोग्य कुल में उत्पन्न, नाचना, गाना आदि विद्याओं और शिल्प से अपनी आजीविका करने वाले (शूद्र) पुरुषों को यज्ञोपवीत आदि संस्कारों की आज्ञा नहीं है। यदि ये लोग अपनी योग्यतानुसार व्रत ग्रहण करते हैं तो उन्हें संन्यासमरण पर्यन्त एक धोती पहनकर रहना चाहिए, यही उनका योग्य चिह्न है।

जिनसेन ने सेवकों का विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने कहा है कि सेवकों को अपने स्वामी से सम्मान पाकर जैसा सन्तोष होता है वैसा धन पाकर भी नहीं होता। वहां यह भी उल्लेख है कि युद्ध में किसी भृत्य की मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्र या भाई को नियुक्त करना चाहिए, जिससे सेवक वर्ग हमेशा संतुष्ट रहेगा और उत्साहपूर्वक कार्य करेगा।

ब्राह्मण

सोलहवें पर्व में जहां ऋषभदेव द्वारा बनाये गये तीन वर्णों का प्रसंग है, वहीं यह भी कहा गया है कि चक्रवर्ती भरत मुख से शास्त्रों का अध्यापन कराते हुए द्विजों (ब्राह्मणों) की रचना करेंगे। स्वयं पढ़ना, दूसरों को पढ़ाना, दान लेना और यज्ञ-पूजादि करना, उनके कार्य होंगे।[६] चालीसवें पर्व में कहा गया है कि जिसने धर्म के द्वारा विजय पायी है, जो धार्मिक क्रियाओं में निपुण है और जिसे धर्मप्रिय है, भरतक्षेत्र के अधिपति भरत ने ऐसे राजा लोगों की साक्षीपूर्वक व्रतों को धारण करने वाले उत्तम द्विजों को शिक्षा देकर ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की। इसके पहले राजर्षि भरत ने तीनों वर्णों के लोगों की परीक्षा करके उनमें से ही व्रती और अहिंसक लोगों का चयन किया और दान देने हेतु उन्हें योग्य पात्र घोषित किया तथा (उन्हें) द्विज नाम दिया। अनन्तर उन द्विजों के लिए विस्तार से (आचार-शास्त्र) उपासकाचार का उपदेश दिया।

भरत ने कहा कि ब्राह्मणों को इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का आचरण करना चाहिए। तप, श्रुत और जाति ये तीन ब्राह्मण होने के हेतु हैं, इनमें हीन मनुष्य केवल जाति ब्राह्मण है। पापरहित आजीविका के कारण इनकी जाति उत्तम मानी जाती है तथा दान, पूजा, अध्ययन आदि के द्वारा बलशुद्धि होने से वह और भी सुसंस्कृत हो जाती है।जो एक बार गर्भ से उत्पन्न हुआ हो तथा दूसरी बार क्रिया से उत्पन्न हुआ हो, वह द्विज कहा गया है, किन्तु क्रिया और मन्त्र से रहित मनुष्य नाममात्र का द्विज है। संस्कार ज्ञान से उत्पन्न होता है, उत्कृष्ट ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, जब पुण्यवान भव्य साक्षात् सर्वज्ञ से ज्ञान प्राप्त करता है, उस समय वह पुरुष उत्कृष्ट ज्ञानरूपी गर्भ से संस्काररूपी जन्म लेकर उत्पन्न होता है तथा व्रत-शील से भूषित होकर द्विज कहलाता है। द्विजों के जाति संस्कार/आचरण को दृढ़ करने के लिए भरत ने तिरेपन गर्भान्वय क्रियाओं, अड़तालीस दीक्षान्वय क्रियाओं तथा सात कर्त्रन्वय क्रियाओं का विधान किया।

आदिपुराण में जिनसेन स्वामी (लगभग ७७०-८५० ई.) ने उपर्युक्त क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण नामक चार वर्णों के अतिरिक्त जिन अन्य कर्मकार जातियों का उल्लेख किया है उनके नाम हैं - आरण्य (अरण्य में रहकर शिकार आदि करने वाले), कुलाल (कुम्भकार या कुम्हार), कुविन्द (जुलाहा), गन्धर्व (संगीतज्ञ नर्तक), गोपालक (ग्वाले), चरक या चरट (जंगलों में निवास करने वाले अरण्यचर), तक्षक (बढ़ई), तिलतुंद (तेली), नापित (नाई), नैगम (व्यापारी), पुलिन्द (शिकारी, बहेलिया), लुब्धक (बहेलिया), मृगयु (शिकारी), शबर (भील), म्लेच्छ, रजक (धोबी) मालिक (माली) और स्वर्णकार। ये जातियां जिनसेन स्वामी के समय में तो विद्यमान रही ही होंगी, आज भी अधिकांश विद्यमान हैं।

जिनसेन स्वामी ने उत्तम कुल और जाति में उत्पन्न होने पर भी जो स्वयं उसका अभिमान नहीं करता है और अरहन्तदेव की सेवा में सदा तत्पर रहता है ऐसे भव्य जीव को अगले जन्म में दिव्या (इन्द्र आदि देवों वाली), विजाश्रिता (चक्रवर्तियों वाली), परमा (घातिया कर्मों का क्षय करके अर्हन्त पद पाने वाली) और स्वाजाति (सिद्ध अवस्था) नामक चार विशिष्ट जातियां प्राप्त होने की बात लिखी है। साथ ही अक्षरविद्या बेचने वाले ब्राह्मणों के लिये 'अक्षरम्लेच्छ' और चाण्डाल के समान पाप कर्म करने वालों के लिये 'कर्मचाण्डाल' की संज्ञा प्रयुक्त की है। उत्तम कुल में उत्पन्न होकर व्रत-शीलादि से युक्त दीक्षा करने योग्य जीव की जाति सज्जाति बताई है। जिनसेन स्वामी द्वारा नवीं शती ईस्वी में प्रणीत **आदिपुराण** तत्कालीन भारतीय समाज संरचना का निदर्शक है और समाज शास्त्र के अध्येताओं के लिये बहुमूल्य निधि है।

[टिप्पणी- उपर्युक्त विवेचन में जो जाति-वर्ण व्यवस्था का निर्देश किया गया है वह ब्राह्मणीय जाति-वर्ण व्यवस्था से सम्पृक्त और प्रभावित है। पुराणकार कदाचित् स्वयं ब्राह्मण जाति के थे और उनके जातिगत संस्कार जैन धर्म में दीक्षित होने के बाद भी निर्मूल नहीं हुए प्रतीत होते है। जैन दर्शन की सैद्धान्तिक दृष्टि से इस प्रकार की जातिवर्गणा का सामंजस्य नहीं प्रतीत होता है। इस विवरण से पुराणकार के समसामयिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश का समाकलन करने के सूत्र उपलब्ध होते हैं, यही इसका उपयोग है। धार्मिक-सैद्धान्तिक दृष्टि से इसका महत्व हमारी अल्पबुद्धि में स्पष्ट नहीं है। यदि इस सबको स्वीकार किया जाता है, तो ब्राह्मणीय और जैन विचारधाराओं में अन्तर कहाँ रह जाएगा?

- डॉ. शशि कान्त]

सन्दर्भ :

१. मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाभेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते।।
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात्।
वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्यात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात्।। **आदिपुराण**,३८/४५-४६

२. क-स्वदोर्भ्यांधारयन् शस्त्रं क्षत्रियानसृजद् विभुः।
क्षतत्राणे नियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः। १६/२४३
ख-क्षत्रियाः शस्त्रजीवित्व-मनुभूय तदाभवन्। १६/१८४
ग- क्षत्रियाः शस्त्रधारणात्। ३८/४६

३. क. वैश्याश्च कृषि वाणिज्य पाशुपाल्योपजीविताः।। १६/१८४
ख. वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्यात्। ३८/४६
ग. उरुभ्यां दर्शयन् यारुत्रामक्षाक्षीद् वणिजः प्रभुः।
जलस्थलादियात्राभिस्तद् वृत्तिर्वार्त्ताया यतः।। १६/२४४

४. क. शूद्रा न्यग्वृत्तिसंख्यात्। ३८/४६
ख. न्यग्वृत्तिनियतां शूद्रां पदभ्यामेवासृजत् सुधीः।
वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिर्नेकधा स्मृता।। १६/२४५

५. तेषां शुश्रूषणाच्छूद्रास्ते द्विधा कार्वकारवः।
कारवो रजकाद्याः स्युः ततोऽन्ये स्युरकारवः।। १६/१८५
कारवोऽपि मता द्वेधा स्पृश्यास्पृश्यविकल्पतः।
तत्रास्पृश्या प्रजाबाह्याः स्पृश्याः स्युः कर्त्तकादयः।। १६/१८६

६. मुखतोऽध्यापयन् शास्त्रं भरतः सूक्ष्यति द्विजान्।
अधीत्यध्यापने दानं प्रतिच्छेज्येति तत्क्रियाः।। १६/२४६

- भारत भवन, पुराना थाना के पास,
वैशाली- ८४४१२८

◆◆◆◆◆

समाज का भविष्य और भविष्य का समाज

- श्री अंशु जैन 'अमर'

भारत सरकार द्वारा भाषायी एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक परिस्थिति पर रिपोर्ट तैयार करने हेतु सेवा-निवृत्त मा. न्यायमूर्ति श्री रंगनाथ मिश्र की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यक आयोग के मा. सदस्यगण - डॉ. मोहिन्दर सिंह, श्री अनिल विल्सन एवं प्रो. ताहिर महमूद तथा सदस्य सचिव श्रीमती आशा दास दिनांक १५ व १६ जून, २००६ ई. को दो-दिवसीय प्रदेश भ्रमण पर लखनऊ आये।

भ्रमण कार्यक्रम का उद्देश्य आयोग के निम्नलिखित विचार बिन्दुओं (टर्म्स ऑफ रिफरेंस) पर विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के साथ व्यापक विचार-विमर्श कर सुझाव प्राप्त करना था-

(क) धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए मापदण्ड निश्चित करने हेतु सुझाव देना;

(ख) ऐसे चिन्हित पिछड़े वर्गों के कल्याण के उपायों की सिफारिश करना, जिसमें शिक्षा एवं सरकारी रोजगार में आरक्षण भी सम्मिलित है;

(ग) ऐसी सिफारिशों को लागू करने के लिए आवश्यक संवैधानिक, विधिक एवं प्रशासनिक तौर-तरीकों का सुझाव देना; तथा

(घ) अनुसूचित जाति के वे लोग जिन्होंने धर्मांतरण कर इस्लाम अथवा ईसाई अथवा कोई अन्य धर्म अपना लिया है, ऐसे लोगों को अनुसूचित जाति का स्तर एवं सुविधाएं बरकरार रखने के सम्बन्ध में अपनी राय देना।

आयोग के दो-दिवसीय कार्यक्रम को चार सत्रों में बांटा गया- (१) प्रथम सत्र में धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यक समुदायों के ख्याति प्राप्त महानुभावों से, (२) द्वितीय सत्र में गैर सरकारी स्वैच्छिक संगठनों/वैज्ञानिकों/शिक्षाविदों/विधिवेत्ताओं/विद्वानों-विदुषियों से, (३) तृतीय सत्र में मा. जनप्रतिनिधियों एवं विभिन्न आयोगों/निगमों/बोर्डों के प्रतिनिधियों से, तथा (४) चतुर्थ सत्र में शासन के विभिन्न विभागों के प्रमुख सचिव/सचिवों से सामूहिक भेंटवार्ता का कार्यक्रम रखा गया था।

जहाँ प्रत्येक सत्र में मुस्लिम समुदाय ने भाग लिया, वहीं सिर्फ प्रथम सत्र में जैन प्रतिनिधि श्री रोहित कुमार जैन एवं श्री अजय कुमार जैन कागजी, लखनऊ,

सम्मिलित हुए। सिख, बौद्ध और ईसाई प्रतिनिधियों ने विभिन्न सत्रों में शिरकत की। लेकिन भाषायी अल्पसंख्यक समुदायों एवं पारसी समाज का एक भी प्रतिनिधि मौजूद नहीं था।

जब विभिन्न सत्रों में विचार-विमर्श का दौर चला तो समागत महानुभावों की विषय की अनभिज्ञता ने उसकी गंभीरता को धो डाला। अधिकांश लोग अपने शैक्षिक संस्थानों, धार्मिक स्थलों एवं भाषा की दुर्दशा का रोना रोते दिखाई पड़े। वे अत्यंत गंभीर विचारणीय विषय पर या तो मौन दिखे अथवा बगले झांकते हुए। जैन प्रतिनिधि भी इससे बेहतर स्थिति में नहीं दिखे। अनुसूचित जातियों के धर्मान्तरण के कारण जनसंख्या को प्राप्त बौद्ध प्रतिनिधि सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित आरक्षण की अधिकतम सीमा पचास प्रतिशत को तोड़ते हुए सभी अल्पसंख्यक समुदायों को आरक्षण दिए जाने के समर्थक दिखे। अल्पसंख्यकों में बहुसंख्यक मुस्लिम समाज ने दलित मुस्लिमों को एवं अन्य पिछड़ा वर्ग में ६ प्रतिशत मुस्लिमों को आरक्षण दिए जाने की पुरजोर वकालत करी। कुछ मुस्लिम प्रतिनिधियों ने आबादी के अनुपात में आरक्षण दिये जाने तक की मांग की। एक मुस्लिम जन प्रतिनिधि ने मौका परस्ती दिखाते हुए अपनी सरपरस्ती में सभी अल्पसंख्यक समुदायों का एक फ्रंट बनाने तक का आह्वान कर डाला। सर्वाधिक आक्रोशित सिख समुदाय ने कहा कि किसी भी अल्पसंख्यक संस्था में एक भी सिख प्रतिनिधि नहीं रखे जाने से उनकी बात कोई सुनता ही नहीं है। इसलिए या तो सिखों को मुस्लिमों के समान प्रतिनिधित्व दिया जाय अथवा अल्पसंख्यक दर्जा वापस ले लिया जाये।

जैन समाज एक शिक्षित, प्रबुद्ध एवं जागरूक समाज है। आयोग द्वारा निर्धारित टर्म्स ऑफ रिफरेंस पर जैन समाज का मौन रह जाना न सिर्फ आश्चर्यजनक है, वरन् खेदजनक भी।

चतुर्थ और अंतिम सत्र में शासन के विभिन्न विभागों के आई.ए.एस./पी.सी. एस. अधिकारियों ने भी विषय की गंभीरता और समाज व राष्ट्र के हितों की उपेक्षा करते हुए स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं संतुलित विचारों की अपेक्षा पूर्वाग्रहपूर्ण निजो विचारों को ही प्रकट किया। निःसंदेह प्रत्येक व्यक्ति अथवा समाज को अपने हित की बात करने का हक है, लेकिन बात जब स्वार्थपूर्ण हो तो क्या कहा जाय ?

इसीलिए भ्रमण कार्यक्रम की समाप्ति पर आयोजित प्रेस-कांफ्रेंस में सार्थक विमर्श के अभाव में सदस्य-सचिव को यह कहना पड़ा कि प्राप्त सुझावों पर भ्रमण कार्यक्रमों के पश्चात् अध्ययन कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करेंगे।

आयोग के टर्म्स ऑफ रिफरेंस के उपरोक्त चारों बिन्दु अन्य अल्पसंख्यक समुदायों की भांति जैन समाज से भी सीधे-सीधे जुड़े हैं। ये बिन्दु समाज के भविष्य एवं भविष्य के समाज का स्वरूप- निर्धारण में महती भूमिका अदा करेंगे। सरकार की नीति-रीति समाज के चिन्तन-मन्थन से और प्रतिक्रिया से ही दिशा प्राप्त करेगी। विषय पर मत-मतान्तर हो सकते हैं, सहमति बनानी होगी। मंथन प्रक्रिया के दौर में निम्नलिखित तथ्य सहायक हो सकते हैं-

(क) अल्पसंख्यक समुदायों में पिछड़े वर्ग की पहचान का आधार धर्म अथवा भाषा नहीं हो सकते। क्या जैनियों अथवा अन्य धर्मावलम्बियों में गरीब नहीं हैं ? आर्थिक पिछड़ापन, विषमता और शोषण सभी धर्मों और भाषा-भाषी समाजों में विद्यमान है। इसी प्रकार सामाजिक एवं शैक्षिक पिछड़ापन भी हर धर्म व भाषागत समाज में मौजूद है। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति अपने परिवार को न तो अच्छा रोटी-कपड़ा-मकान दे सकेगा, न अच्छी व उच्च शिक्षा, और न ही कोई कारोबार।

इसलिए पिछड़े वर्ग के चिन्हांकन का आधार एक मात्र आर्थिक ही हो सकता है। आयकर दाता नौकरी पेशा एवं व्यवसायियों एवं एक निश्चित जोत सीमा तक के कृषकों से निम्न स्तरीय परिवारों को पिछड़े वर्ग का दर्जा प्रदान किया जाना चाहिए।

(ख) योग्यता और प्रतियोगिता के इस दौर में आरक्षण किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। आरक्षण की इच्छा किसी योग्य को नहीं बल्कि अयोग्य को होती है, जो निःसंदेह किसी भी धर्म-भाषा-समाज व राष्ट्र की उन्नति में बाधक है। फिर भी, यदि आरक्षण का लाभ दिया जाना अपरिहार्य हो, तो बिना धर्म- जाति-लिंग-क्षेत्र आदि के आधार पर कोई भेदभाव किए सिर्फ आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों को ही आच्छादित किया जाना चाहिए।

(ग) आरक्षण से लाभान्वित परिवार के एक बार आयकर सीमा में आने पर दुबारा आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए। शिक्षा-क्षेत्र में भी आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों को निःशुल्क अथवा अल्प-शुल्क पर शिक्षा, कोचिंग, छात्रवृत्ति, पुस्तकें आदि उपलब्ध करायी जायें, लेकिन इन योजनाओं की जांच-मानीटरिंग 'आई.ए.एस. संस्कृति' की न होकर, 'ग्रॉस रुट लेवल' की होनी चाहिए, चरणबद्ध होनी चाहिए, समयबद्ध होनी चाहिए। ऐसा न होने पर संबंधित अधिकारियों को सख्त से सख्त दण्ड दिया जाना चाहिए, न कि सिर्फ प्राविधान।

(घ) पहले वर्ण-व्यवस्था कर्म-आधारित थी और कुछ कार्य-विशेष करने वाले लोग अस्पृश्य माने जाते थे। कालांतर में वर्ण-व्यवस्था जन्म-आधारित हो गयी तब जाति-विशेष के सभी लोग अस्पृश्य माने जाने लगे। यह जातिगत अस्पृश्यता हिन्दू समाज में विद्यमान थी। बाद में इन्हें दलित कहा गया। फिर ब्रिटिश शासन में इन जातियों की एक अनुसूची बनाकर इन्हें अधिसूचित कर दिया तब ये 'अनुसूचित जाति' कहलाने लगी।

अस्पृश्यता जैसी कुरीति हिन्दू समाज को छोड़कर कम से कम जैन, ईसाई और मुसलमान समुदाय में देखने को नहीं मिलती है। सभी धर्म-समाजों में भेदभाव एवं विषमता तो होती है, लेकिन अस्पृश्यता नहीं। इसी लिए बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, पारसी और मुस्लिम जैसे अन्य अल्पसंख्यक समुदायों में मूलतः 'अनुसूचित जाति' जैसी कोई जाति-उपजाति अथवा वर्ग नहीं पाया जाता है। धर्मांतरण से उत्पन्न अनुसूचित जातियों की बात अलग है।

मेरा मानना है कि अनुसूचित जाति का कोई व्यक्ति यदि अपने धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म को अपनाता है तो वह उस धर्म की अच्छाइयों से प्रभावित होकर उस धर्म के गुणावगुण दोनों को समग्र रूप में अपनाता है, न कि आंशिक रूप में।

यदि कोई व्यक्ति जैन-धर्म से प्रभावित होकर उसे ग्रहण करता है तो उसका स्वागत है। लेकिन ऐसे धर्मान्तरित व्यक्ति का अनुसूचित जाति का स्तर/सुविधा बनाए रखने से क्या हम जैन- धर्म समाज में भी अस्पृश्यता जैसे कोढ़ का बीजारोपण कर उसे पल्लवित-पुष्पित होने का अवसर नहीं प्रदान करेंगे? क्या हम किसी ईसाई-मुस्लिम-सिख भाई को सशर्त जैन कहलाने का हक दे सकते हैं कि तुम कभी-कभार अण्डा-मछली-बकरा खा सकते हो? निःसन्देह कभी नहीं। या फिर, जैन धर्मावलम्बियों की जनसंख्या-वृद्धि करने के लिए ऐसे धर्मान्तरणों का सहारा अपरिहार्य हो गया है ?

इसलिए यदि अनुसूचित जाति का कोई व्यक्ति अथवा अन्य धर्मावलम्बी जैन, ईसाई, इस्लाम आदि धर्म अपनाता है, जहाँ अस्पृश्यता मूलतः नहीं है, उसका अनुसूचित जाति का दर्जा स्वतः समाप्त हो जाता है।

यदि उसका अनुसूचित जाति का स्तर बरकरार रखा जाएगा तो अनेक अवसरों पर अनुसूचित जाति एवं अल्पसंख्यक दोनों को प्राप्त सुविधाओं का दोहरा लाभ उठाने जैसी विसंगतियां उत्पन्न हो सकती हैं, चाहे वह छात्रवृत्ति हो अथवा अनुदान अथवा

आर्थिक सहायता हो अथवा निःशुल्क कोचिंग-प्रशिक्षण हो अथवा आरक्षण। यह सही है कि एक समय में एक ही श्रेणी के आरक्षण का वह लाभ प्राप्त कर सकेगा। लेकिन यदि कहीं अल्पसंख्यक आरक्षण मिलेगा, वहाँ उसे लेगा, अन्यत्र अनुसूचित जाति के आरक्षण का लाभ उठाना चाहेगा।

जहाँ तक मुस्लिम एवं ईसाई समुदायों द्वारा धर्मान्तरित हिन्दुओं के अनुसूचित जाति का स्तर बनाए रखने के समर्थन का प्रश्न है, इस सम्बंध में यह उल्लेखनीय है कि समय-समय पर बड़ी संख्या में हिन्दु धर्मानुयायी अनुसूचित जाति के लोगों ने शोषण, उपेक्षा अथवा प्रलोभन के कारण इस्लाम अथवा ईसाई धर्म में अन्तरण किया है। एक ओर तो यदि उनका अनुसूचित जाति का दर्जा समाप्त हुआ तो उनका आरक्षण भी छिन जाएगा, जिससे उनके धर्मान्तरण की गति अवरुद्ध हो जाएगी। दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि अनुसूचित जाति के नाम पर भी ये धर्म-समाज कुछ न कुछ प्रतिशत आरक्षण-सुविधा से आच्छादित हो सकेगी। क्या जैन समाज को ऐसे आरक्षण अथवा धर्मान्तरणों की आवश्यकता है ?

निःसंदेह विचाराधीन विषय हमारे आर्थिक, शैक्षिक, धार्मिक और सामाजिक ताने-बाने को छूते हैं, तो हम अछूते कैसे रह सकते हैं। विषय गम्भीर है, इस पर जल्दबाजी में नहीं वरन् जल्दी ही जैन समाज को व्यापक राष्ट्रीय बहस कर दूरदर्शिता पूर्ण निष्कर्ष प्राप्त करने होंगे। अन्यथा मौन समाज से लोग कहेंगे-

"अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।"

यह आशा की जाती है कि समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों का एक प्रतिनिधि मण्डल आयोग से व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क कर समाज में उभरी सहमति को लिखित रूप में सौंपेगा।

समाज के जागरूक एवं बुद्धिजीवी लोग भी अपने-अपने विचार शीघ्रातिशीघ्र (एक माह के भीतर तक) आयोग को निम्नलिखित पते पर भेज सकते हैं- श्री एम. सी. जोशी, संयुक्त सचिव, भारत सरकार, राष्ट्रीय धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यक आयोग, अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय, द्वितीय तल, गेट सं.-३० जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम, नई दिल्ली-११०००३, फैक्स नं. २४३६७७६४

- ज्योति निकुंज, चारबाग,
लखनऊ

◆◆◆◆◆

एक विशाल वृक्ष का धराशायी होना

- श्री कैलाश चन्द जैन

सोचा था कि जिसकी लेखनी से अग्नि वर्षा होती है, जिसने कभी किसी का लोहा नहीं माना, जो पुरस्कार, पदवी आदि से खरीदा न जा सका वह **शोधादर्श** का सम्पादक अवश्य ही शरीर, वाणी और व्यवहार में वैसा ही तीखा तेज तर्रार होगा कि उससे साक्षात्कार करते समय सावधान रहना पड़े। ऐसी ही ऊहापोह की स्थिति में आर्यनगर में उनसे मिलने उनके घर जा पहुंचा। लखनऊ के व्यस्त शोरगुल भरे परिवेश में कहीं एक कोने में विशाल पीपल की ठंडी छांव में धड़कते मन को कुछ सान्त्वना देता उनका घर। पहले जिस व्यक्ति से साक्षात्कार हुआ खादी की बंडी, घुटने तक की छोटी धोती, आंखों पर मोटा चश्मा, कमर झुकी हुई। "मुझे श्री अजित प्रसाद जी से मिलना है।" "आइये। मैं ही अजित प्रसाद हूँ।"

साधारण कमरा, कोई साज-सज्जा नहीं। अलमारी किताबों से भरी, मेज पर बेतरतीब फैले लिखे-अनलिखे कागज। आवाज इतनी धीमी कि पूर्ण सतर्क रहकर वार्तालाप करना पड़ा। विदा होते समय अपनी छेड़खानी की आदतानुसार कहा "क्या सचमुच ही आज मेरे सामने अजित प्रसाद जी ही खड़े हैं।" उधर से कोई उत्तर नहीं, दाहिना हाथ बढ़ाकर मेरे कंधे को दबा दिया और फिर दोनों हाथ नमस्कार की मुद्रा में जोड़ लिए। बलवती इच्छा हुई कि इस असाधारण व्यक्ति के पैर छूना चाहिए। मैं झुका, पर उन्होंने बीच में ही अपने हाथों से मुझे सम्हाल कर रोक दिया। "यह क्या करते हैं? मुझे झुकना न सिखाइये।" लखनऊ में एक बार फिर स्व. ज्योति प्रसाद जी की स्मृति सभा में साक्षात्कार हुआ। मुझे देखते ही पहचान लिया था और मुस्कराकर मेरा स्वागत किया, नहीं-नहीं, आशीर्वाद दिया। परोक्ष में **शोधादर्श** के माध्यम से सम्पर्क बना रहा था। मैं प्रशंसक से उनका भक्त बनता जा रहा था कि उनकी इस पंक्ति ने कि "अतिरेक पर नियंत्रण आवश्यक है व्यक्तित्व के सम्यक् विकास के लिए" मुझे संभाल दिया।

फिर एक दिन प्रातः मंदिर जाते समय देखा कि पार्क में एक विशालकाय हरा भरा वृक्ष रात्रि की आंधी तूफान से धराशायी होकर गिरा पड़ा है जिसके नीचे कितने ही बच्चे धमा-चौकड़ी मचाते हुए उसकी शाखाओं से झूलते थे। तप्त दोपहर में अनेक आश्रय पाते थे। मन विषाद से भर गया कि इतना विशाल, इतना लाभकारी, परोपकारी और आज अब भूमिसात !

मंदिर जी से लौटने पर भाई रमा कान्त जी का "चाचा जी नहीं रहे", हृदय विदारक समाचार फोन पर सुना और कुछ क्षण स्तब्ध रह गया, वाणी मूक हो गई, मुश्किल से सान्त्वना के दो शब्द कह सका।

फिर कुछ समय बाद देखा कि कारपोरेशन के कर्मचारियों ने जहां वह विशाल वृक्ष खड़ा था उसी के तने के एक छोटे हिस्से को किसी जगह रोप दिया है। समझ में नहीं आया कि क्या यह समाधि स्थल का स्मारक है। प्रतिदिन बरबस उधर निगाह उठती और उस ठूंठ को देखकर मन विषाद से भर जाता कि एक दिन महान आश्चर्य हुआ - उस ठूंठ में से एक नन्हीं सी हरी डाल की कोंपल फूटी। और **शोधादर्श** का नया अंक सामने था जो उनको निरन्तर स्मृति में बनाये रखेगा।

३७/७ बी, खेलात बाबू लेन,
कोलकाता-७०००३७

◆◆◆◆

ऐसे थे हमारे बाबू अजित प्रसाद

गंगा जैसा उनका मन था, और अद्‌भुत था उनका ज्ञान,
हिमालय जैसा व्यक्तित्व था उनका किए उन्होंने काम महान।
उनके व्यक्तित्व ओर कृतित्व सदा हमें दिलाते रहते हैं उनकी याद,
मृदुभाषी, सरल हृदयी और कटु लेखनी, ऐसे थे हमारे बाबू अजित प्रसाद।।
जैन जगत के गौरव थे, किए उन्होंने ऊँचे काम,
अपनी लेखनी से कमाया उन्होंने दुनिया में नाम।
सबको धर्म का मर्म समझाकर सही पथ दिखलाया था,
उनकी बतलाई बातों की हम आज भी करते हैं याद।
गंगा जैसा मन था, ऐसे थे हमारे बाबू अजितप्रसाद....।
अपने आदर्शों से शोधादर्श को नई ऊँचाईयों पर पहुँचाया था,
अपनी सशक्त लेखनी से जैन सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाया था,
उजाले अपनी यादों के जो छोड़ गए हैं, उन्हें हम रखेंगे याद,
सबके दिलों में आज भी बस रहे हैं, ऐसे थे हमारे बाबू अजित प्रसाद।

- श्री रोहित कुमार जैन
६, द्वारिकापुरी, इन्दिरानगर, लखनऊ

तपस्या पर आधुनिक ऊहापोह

– डॉ. प्रद्युम्न कुमार 'अनंग'

१. **तत्वार्थ-अधिगम-सूत्र** जैसे सर्वमान्य मानक ग्रंथ में 'तपसा निर्जरा च' (९-२) सूत्र में तप का महत्व रेखांकित किया गया है। उसके पूर्व आस्रव-निरोध संवर के लिए (९-१) और तीन गुप्ति, पांच समिति, बारह धर्मानुप्रेक्षाएं, बाईस परीषहजय और पांच प्रकार के चारित्रपालन का निर्देश रेखांकित है (९-२)। आगे भी तपस्या अंतरंग और बहिरंग रूप से निर्देशित है। अंतरंग तप स्वनिष्ठ निजी स्तर पर सत्यापनीय क्रियाकलाप है। बहिरंग तप बाहर दर्शनीय, वस्तुनिष्ठ सत्यापनीय द्रव्यतप है। अब विसंगति की गुंजायश यहीं बनती है। एक प्रकार का तप स्वनिष्ठ रूप से सत्यापनीय है और दूसरा प्रकार वस्तुनिष्ठ सत्यापनीय। दोनों तपों के अलग-अलग मॉड्यूल और मापदंड हैं। अब किस मॉड्यूल के प्रति निष्ठावान साधक सच्चा तपस्वी है, और वह कितना सच्चा है-यह तय कैसे हो? कोई व्यक्ति अंतरंग तपरूप प्रबुद्ध स्वाध्याय तथा प्रशस्त ध्यानाभ्यास में बहुत पीछे है, किन्तु बाहरी चारित्र और परीषहों को जय करने में काफी आगे है, क्या वह अनुकरणीय बड़ा तपस्वी है ? या दूसरा साधक परीषहजय का अधिक आडम्बर न पाल कर धर्मध्यान करने में सिद्धहस्त है और शुक्लध्यान की प्रारम्भिक भूमिका तक पहुंचने की कोशिश कर रहा है, उसे बड़ा अनुकरणीय तपस्वी कहा जाए। यह बड़ा विवादित मुद्दा है आज।

२. विसंगति की खाई और अधिक चौड़ी इसलिए हो रही है, कि आज का मनुष्य आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी का अभ्यस्त हो रहा है और मनुष्यों का एक वर्ग इतना अधिक मेधावी हो रहा है कि वह वस्तुसत्य की अचित्य बारीकियों का विमर्श करने में समर्थ है। कम्प्यूटर से सुपर कम्प्यूटर तक का रेंज इतना बड़ा हो गया है जिसे कभी सोचा भी नहीं गया था और मेधा की सूक्ष्म पकड़ किस सीमा तक पहुंचेगी, सोच पाना मुश्किल है। क्या ऐसा मेधावी परावैज्ञानिक उन बाल-तपस्वियों के चरणों में बैठकर जीवन के बारे में दिशानिर्देश ले ? क्या यथाकथित तपस्वी जन उन मेधावी लोगों की एक भी शंका का समाधान करने की स्थिति में हैं? जवाब चाहिए।

३. आज यथाकथित तपस्वी जन वाह्य वेष शास्त्रोक्त बनाकर विभिन्न क्रियाकलापों का नेतृत्व कर रहे हैं। रथयात्राएं, कर्मकाण्डी खर्चीले आयोजन कर और करवा रहे हैं। विभिन्न प्रकार के जुलूस और रैलियां कर रहे हैं, अहिंसा के नाम पर कुम्भ आयोजित कर लाखों की भीड़ को सम्बोधित कर रहे हैं तो प्रश्न है कि क्या यह सब व्यायाम मोक्ष साधने के लिए हो रहा है ? शास्त्रों में तपस्या का विधान मोक्ष

के लिए किया गया है। मोक्ष की साधना एकाकी साधना होती है, भीड़ की नहीं। तो यह आज की हो रही तपस्या ग्रंथ-भेद की जगह कौन सा लक्ष्य-बेध कर रही है ?

४. तपस्या के इस दिखावे से मुझे लगता है कि निर्जरा तो दूर अनास्रवीकरण भी ठीक से नहीं हो रहा है। इसलिए सोचने की जरूरत है कि जिन बाईस परीषहों की सूची दी गई है उन्हें यदि निष्ठापूर्वक जय भी किया जाता है तो क्या उस से कोई तात्विक उपलब्धि भी होती है। संकल्प-पूर्वक परीषहों को जीतने से कष्ट सहने और विपरीत परिस्थितियों में समता धारण करने का अभ्यास पुष्ट होता है। ये वैयक्तिक चरित्र के सद्गुण हैं। परन्तु इन अच्छे अर्जित गुणों की नुमाइश लगाकर समाज का नेतृत्व-लाभ लेना मुनिचर्या और उसके उद्देश्य के कितना अनुकूल है, यह विचारणीय प्रश्न है।

५. श्रमण मुनि सामाजिक क्रियाकलाप में किस हद तक संलिप्त हो, यह सोचना है, क्योंकि जैन मुनि सामाजिक कार्यकर्ता नहीं होता है। सामाजिक दायित्वबोध के लिए अनेक सामाजिक संस्थाएं और संगठन अस्तित्व में हैं जो सामाजिक दायित्वों को अच्छी या बुरी तरह निभा रहे हैं। मुनि संस्था कोई सामाजिक संस्था नहीं है इसका उद्देश्य, सच पूछो, लौकिक है ही नहीं। यह लोकोत्तर उद्देश्यपूर्ति के लिए बनाई गई है। यदि यह संस्था भी लौकिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए प्रतिबद्ध हो गई, तो आखिर लोकोत्तर जीवन की चिन्ता कौन करेगा ? फिर प्रश्न उठेगा, कि श्रमण जैन धर्म के सरोकार क्या हैं ? उसकी प्रासंगिकता क्या है ? शायद इसीलिए आचार्य महाप्रज्ञ ने गृहस्थ साधुओं पर जोर देना शुरू कर दिया है। उन्होंने गृहस्थ साधु-संस्था का सामणी नाम दिया है। यह उनका नया प्रयोग है। उन्होंने नई दिशा में सोचा तो है।

६. तपस्या के द्वैत से ही दो तरह के मुनि सामने आए - १. भावलिंगी मुनि, २. द्रव्यलिंगी मुनि। भावलिंग आंतरिक तपस्या से प्रतिबद्ध, और बाहर से अलिप्त साधारण साधु-चर्या, महाप्रज्ञ जी के शब्दों में, गृहस्थ साधु है। द्रव्यलिंग बाहर से शास्त्रोक्त कठोर चर्या से प्रतिबद्ध, परन्तु अंतरंग में ध्यानाभ्यास से शून्य साधु है। इस प्रकार सिद्धान्ततः दोनों ही लिंग अधूरे हैं, परन्तु व्यवहारतः द्रव्यलिंग अधिक जोखिमपूर्ण स्थिति में है, क्योंकि प्रकटतः वह पूर्ण साधु है जबकि वास्तव में वह वैसा नहीं है। सामान्य श्रावक उस मुनि को पूर्ण साधु समझ कर नाना अपेक्षाएं कर उठते हैं। द्रव्यलिंगी मुनि अपनी प्रतिष्ठा बचाने के मोह में आडम्बर और ढोंग ओढ़ उठता है, कुछ मिथ्यात्व-साधना स्वरूप तंत्र-मंत्र, गंडा, ताबीज, झाड़-फूंक और आशीष देना आदि कर वह साधु मिथ्या दृष्टि होकर अपना परभव तो बिगाड़ता ही है जैन साधना को भी बदनाम करता है। इन द्रव्यलिंगी साधुओं की पहचान कर उन पर

लगाम कैसे कसी जाए, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है आज प्रबुद्ध धार्मिक समाज के सामने।

७. अब प्रश्न आता है परीषहजय और उपसर्ग-निवारण का। ध्यातव्य है, शास्त्रोक्त परीषह बाईस हैं, यथा - १. क्षुधा, २. तृषा, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. दंशमशक, ६. नाग्न्य अथवा नग्नता, ७. अरति, ८. स्त्री, ९. चर्या, १०. निषद्या, ११. शय्या, १२. आक्रोश, १३. बध, १४. याचना, १५. अलाभ, १६. रोग, १७. तृणस्पर्श, १८. मल, १९. सत्कारपुरस्कार, २०. प्रज्ञा, २१. अज्ञान, २२. अदर्शन। (**तत्वार्थ** ०९-९)। परीषहों की तरह उपसर्गों की कोई सूची निर्धारित नहीं है। दोनों का अंतर यह है कि परीषहें प्रकृतिजन्य और मानवकृत होती हैं जिन्हें यदि साधक चाहें तो किनारे कर सकता है या बचा सकता है, परन्तु उपसर्ग पशु, मनुष्य या व्यंतर देवों द्वारा जानबूझ कर साधक के विरुद्ध पैदा की गई चुनौतियां हैं, जिन्हें विधानतः मुनि अपने मन और शरीर से समतापूर्वक सहन या झेलने के लिए प्रतिबद्ध है। पूरा जैन इतिहास साधक-मुनियों के परीषह और उपसर्ग-जय की गौरवगाथाओं से भरा हुआ है। आज भी कुछ मुनि सच्चे अर्थों में परीषहजय करते हैं। परन्तु उपसर्ग-विजय की नौबत नहीं आती, क्योंकि उपसर्गों की चुनौती के विरुद्ध श्रावकों द्वारा रचित सुरक्षा-कवच पहले से तैयार रहता है। परीषहजय के लिए यही सुरक्षाकवच सुविधाएं सुलभ करने के लिए तैयार है। तो अब प्रश्न है, कि सुरक्षा कवचों के साये में तपस्या करना या उसके शो आयोजित करने की प्रासंगिकता क्या है ? और इस शो-आयोजन से तपस्या के मूल उद्देश्य यानि मोक्ष-प्राप्ति की पूर्ति किस हद तक संभव है ? लगता है, सच्चे अर्थों में ग्रंथि-भेदन की तपस्या अब दूर की कौड़ी हो गई है।

फिर भी मैं तपस्या की उच्च भूमिका के आगे नतशिर हूँ। मेरा आशय तपस्या के मूल्य को कम करना कदापि नहीं है, बल्कि मेरा सविनय निवेदन यह जरूर है कि तपस्या के मूल्य को बदली परिस्थितियों में पुनः परिभाषित कर पुनर्मूल्यांकित करना चाहिए, जैसा म. गांधी ने राजनीति के लौकिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग करके किया। जहां तक ग्रंथि-भेदन क्रिया का प्रश्न है, उसके लिए तपस्या के पुराने तरीके के साथ नयी वैज्ञानिक तकनीकी का प्रयोग आजमाया जा सकता है। जिस प्रकार असामान्य मनोचिकित्सा के क्षेत्र में सिजोफ्रेनिया की चिकित्सा के लिए सोचा जा रहा है कि सिजोफ्रेनिका सिंड्रोम को लेजर-थिरेपी या इसके भी आगे नाभिकीय विकीरण की सहायता से तोड़ दिया जाए। यह भी एक प्रकार का ग्रंथि-बेध है। तो क्या जो परिणाम तपस्या की जटिल प्रक्रिया से हासिल किया जाता रहा है वही परिणाम आधुनिक तकनीकी की मदद से प्राप्त करने की नहीं सोचना चाहिए? कर्म-ग्रंथियों के

सूक्ष्म स्कंध, जो कार्माण शरीर के घोर अंधकारमय अचेतन लोक में सो रहे हैं या अपनी अतृप्त चाहों के स्वप्न देख रहे हैं उन्हें सुपरकम्प्यूटर की आंखों से देख कर उनके सूक्ष्म अस्तित्व को बेध कर निर्जरित किया जाए। अगर इस प्राक्कल्पना पर प्रॉजेक्ट बनाकर काम शुरू किया जाए तो यह बहुत बड़ी क्रान्ति हो सकती है। फिर तो तपस्या की जटिल प्रक्रिया से भी मुक्ति मिल सकती है तथा मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

[टिप्पणी- डॉ. प्रद्युम्न कुमार जैन 'अनंग' ने २००५ ई. में राजस्थान विश्वविद्यालय के अन्तर्गत जैन अनुशीलन केन्द्र, जयपुर, में जैन दर्शन की आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के सन्दर्भ में प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए ५ व्याख्यान दिये थे। उन व्याख्यानों को उन्होंने अपनी पुस्तक **जैन दर्शन का अस्तित्ववादी चिंतन** में समाहित किया है। इस चिंतन को दो विभागों में 'अस्तित्व-चिंतन' और 'अस्तित्व की व्यवहार-थिरेपी और साधनातंत्र' में संपादित किया गया है। जैन चिंतन का मूलाधार, तत्व चिंता, त्रास-मुक्ति का चिंतन, त्रास-मुक्ति की संभावना, संवर, अस्तित्वादी चिंतन का उपसंहार, तथा अस्तित्व की न्याय-प्रक्रिया का विवेचन, पहले विभाग में है। मन की त्रासद समस्या, कर्मरोग का चिंतन, उबारक आर्य-भावनाएं, ध्यान-प्रक्रिया, मेरु-साधना, तथा संवर के अन्य साधन, दूसरे विभाग में चर्चित हैं। **लेखक जैन दर्शन** के गहन अध्येता हैं। उन्होंने सहज शैली में आधुनिक वैज्ञानिक सोच और दार्शनिक-तात्विक चिंतन के सापेक्ष जैन तात्विक विवेचन की प्रासंगिकता एवं प्रामाणिकता को रेखांकित किया है। प्रश्नचिह्न हैं परन्तु समाधान निष्कर्षतः परम्परा से प्राप्त चिंतन को पुष्ट करते हैं।

ऊपर प्रस्तुत **'तपस्या पर आधुनिक ऊहापोह'** उक्त पुस्तक का अंश है जिसमें लेखक ने उन्मुक्त रूप से तपस्या के वर्तमान स्वरूप पर कटाक्ष करते हुए और विज्ञान द्वारा कर्म-ग्रंथि भेदन की तकनीक उपलब्ध कराये जाने की संभावना का आभास करते हुए, तात्विक दृष्टि से कर्मों की निर्जरा के लिए परम्परा से प्राप्त तपस्या संबंधी चिंतन को नकारा नहीं है। इसमें उठाये गये प्रश्न गृहस्थों और त्यागियों, दोनों ही के लिए मननीय हैं - तपस्या का अवमूल्यन कर रहे त्यागियों और उनके भक्तों के लिए विशेष रूप से।

यदि कोई संस्थान इस विचार-प्रेरक पुस्तक को प्रकाशित करना चाहें तो वह कृपया लेखक डॉ. प्रद्युम्न कुमार जैन 'अनंग', नेहांगन, ३२, अग्रसेन नगर, किच्छा रोड, रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)- २६३१५३, से सम्पर्क कर लें।

- डॉ. शशि कान्त]

खारवेल-पुनश्च

- डॉ. शशि कान्त

शोधादर्श-५६ (जुलाई २००५) में पृ. १२-२० पर प्रकाशित खारवेल विषयक हमारे लेख पर **समन्वय वाणी** (अक्टूबर २००५ प्रथम पक्ष) के पृ. ३ पर सौ. शैल बंसल के माध्यम से 'खारवेल को प्रकाश में लाने का श्रेय आचार्यश्री विद्यानन्दजी' को शीर्षक से निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित हुई है :-

"शोधादर्श के नए अंक ५६ जुलाई ०५ में डॉ. शशिकान्त जी का खारवेल विषयक लेख पढ़कर आश्चर्य हुआ। पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी प्रारंभ से ही शोध खोज के व्यसनी रहे हैं। सन् १९६० से ही आप मेघवाहन सम्राट खारवेल के विषय में जिज्ञासु रहे हैं। आप सन् १९६० में भुवनेश्वर पधारे और यहां खण्डगिरि उदयगिरि की गुफाओं में १५ दिन तक लगातार घूम घूमकर शोध खोज में लगे रहे. वहां की सम्पूर्ण व्यवस्था बाबू छोटेलाल जी कोलकाता एवं बिजेन्द्र जैन ने संभाली थी. वहां से संबंधित फिल्में भी प्रोजेक्टर के माध्यम से मुनिश्री को दिखलाई थीं जिससे उत्साहित होकर ही महाराजश्री ने अनेक लेखकों से खारवेल विषयक लेख व पुस्तके तैयार कराईं। यही नहीं प्रो. जी० ब्रह्मप्पा से आपने खारवेल विषयक जीवन चरित्र कन्नड भाषा में लिखवाया और अपने प्रयासों से मैसूर विश्वविद्यालय के बी.ए. के कोर्स में उक्त पुस्तक लगवाई।

आज भी कुन्दकुन्द भारती भवन में खारवेल के शिलालेख की प्रतिकृति बड़ी साइज में मुख्य कार्यालय में लगी हुई है। नवनिर्मित भवन का नाम खारवेल भवन रखा गया है। अनेक गोष्ठियां आप तद्विषयक करा चुके हैं। आज भी हर रविवार को खारवेल विषयक अध्ययन जारी है। यह सब आचार्यश्री का खारवेल के प्रति जागरूकता का परिचायक है। इस प्रकार यदि खारवेल को प्रकाश में लाने का श्रेय किसी को जाता है तो वह आचार्यश्री की ४६ वर्ष की उनके प्रति साधना को जाता है।"

इस टिप्पणी को पढ़कर प्रथमदृष्टया स्वाभाविक रूप से विस्मय हुआ, तथा इसकी उपेक्षा करना ही उपादेय लगा। परन्तु इससे जो नई जानकारी हुई उसने तथ्यान्वेषण के लिए भी प्रेरित किया। सन् १९६० से खारवेल के विषय में आचार्यश्री जिज्ञासु रहे हों और उस वर्ष उन्होंने खण्डगिरि-उदयगिरि की गुफाओं का भ्रमण किया हो, इसमें विस्मय की कोई बात नहीं है। इतिहास का विद्यार्थी होने के नाते खारवेल और उसके हाथीगुम्फा शिलालेख ने हमारा ध्यान १९५० में ही आकर्षित किया था।

विविध विश्वस्त सूत्रों से जो जानकारी अन्य बातों के बारे में प्राप्त हुई, वह निम्नवत है -

१. कुन्दकुन्द भारती भवन में 'खारवेल भवन' का शिलान्यास उड़ीसा के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री जानकीवल्लभ पटनायक के द्वारा वर्ष १९९९ ई. में सम्पन्न हुआ था।

२. खारवेल के लेख की अनुकृति कदाचित् उस घटना के बाद ही कुन्दकुन्द भारती भवन में लगाई गई।

३. प्रथम खारवेल महोत्सव और एक त्रिदिवसीय सेमिनार का आयोजन दिनांक १६ से १८ जनवरी, १९९९ ई. को भुवनेश्वर में ऋषभदेव प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। इसे आचार्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त था और उनकी शोध-खोज को विद्वानों ने इसमें सम्पुष्ट किया था। इस आयोजन पर सात लाख रुपये का व्यय हुआ बताया जाता है और प्रत्येक समागत विद्वान पर भी प्रति विद्वान सैंतीस हजार रुपये व्यय किये गये बताये जाते हैं।

४. प्रो. जी० ब्रह्मप्पा ने सन् १९६४ ई. में प्रकाशित कन्नड भाषा में लिखित अपने उपन्यास **सम्राट खारवेल** में अपनी प्रस्तावना दिनांक ०८.०८.१९६४ में यह उल्लेख किया है कि दो वर्ष पहले मैसूर में उनसे क्षु. पार्श्वकीर्ति स्वामी मिले थे जो उड़ीसा का भ्रमण करके लौटे थे। क्षुल्लक जी ने लेखक के कवि रत्नाकर पर उपन्यास से प्रभावित होकर लेखक को खारवेल के सम्बन्ध में उपन्यास लिखने का सुझाव दिया था। श्री ब्रह्मप्पा ने श्री एम.ए. राजा द्वारा हाथीगुम्फा शिलालेख के प्राकृत से कन्नड भाषा में किये गये अनुवाद को आधार बनाकर तथा कुछ अन्य मित्रों जिनमें श्री हम्पा नागराजैय्या भी थे, के सुझावों का उपयोग करते हुए कन्नड भाषा में **सम्राट खारवेल** नामक उपन्यास का प्रणयन किया था। श्री ब्रह्मप्पा ने अवगत कराया है कि यह मात्र एक ऐतिहासिक उपन्यास है, कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं। उन्होंने यह भी अवगत कराया है कि मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा सत्र १९६५-६६ में इसे प्री-यूनिवर्सिटी कोर्स में पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित किया गया था। यद्यपि 'क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति' २५.७.१९६३ को 'मुनि विद्यानन्द' के रूप में दीक्षित हो चुके थे, श्री ब्रह्मप्पा को ८.८.१९६४ तक कदाचित् इसकी जानकारी नहीं थी अन्यथा वह अपनी प्रस्तावना में इसका उल्लेख करते। उनकी यह कृति मात्र एक वर्ष ही विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित रही जिसके लिये भी उन्होंने मुनि जी को कोई श्रेय नहीं दिया है।

पुस्तक के प्रकाशन के लगभग ३४ वर्ष बाद श्री ब्रह्मप्पा को दिनांक १८.०१.१९९९ को भुवनेश्वर में 'खारेवल महोत्सव' में खारवेल की स्मृति में एक लाख रुपये की राशि का प्रथम पुरस्कार एवं 'इतिहास रत्न' का मानद अलंकरण धर्मानुरागी

माननीय श्री जानकीवल्लभ पटनायक (तत्कालीन मुख्यमंत्री) द्वारा समर्पित किया गया। इसका श्रेय अवश्य ही आचार्यश्री को जाता है जिनकी प्रेरणा से श्री ब्रह्मप्पा ने कन्नड भाषा में **सम्राट खारवेल** उपन्यास का प्रणयन किया था।

५. १९२० के दशक में श्वेताम्बर आम्नाय के मुनि कल्याण विजय और मुनि पुण्यविजय ने तथा पुनः १९७० के दशक में आचार्यश्री हस्तिमल ने खारवेल में अभिरुचि प्रदर्शित की थी जिसका आशय खारवेल को श्वेताम्बर आम्नाय का पोषक प्रदर्शित करना था।

दिगम्बर आम्नाय के साधु समुदाय में आचार्यश्री विद्यानन्दजी के अतिरिक्त किसी अन्य साधु-साध्वी की इस विषय में अभिरुचि की जानकारी सम्प्रति नहीं है। आचार्यश्री ने प्रभावना के उत्साह में **उवासग (श्रावक) राजा खारवेल को दिगम्बर मुनि खारवेल** ही घोषित करा दिया। खारवेल ने विजित पिथुण्ड नगर को गधों के हल से जुतवाया था जो परायज का सूचक था, परन्तु आचार्यश्री के एक भक्त विद्वान ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया कि चूंकि बैल भगवान ऋषभदेव का लांछन है अतः धर्मनिष्ठ खारवेल ने बैल के बजाय गधों से हल चलवाये। एक अन्य भक्त विद्वान ने पुरी के जगन्नाथ को जो मूल रूप में काष्ठ का कुंदा है, 'कलिंग जिन' से चीन्हने की दूरन्देशी भी प्रदर्शित की है।

अन्त में हम बड़ी विनम्रता से यह निवेदन करना चाहेंगे कि जैसा कि हम अपने पूर्व लेख में सूचित भी कर चुके हैं, हाथीगुम्फा शिलालेख को प्रकाश में लाने का श्रेय १८२५ ई. में अंग्रेज सैलानी मि. स्टर्लिंग को जाता है और उस पर प्रायः पौने दो सौ वर्ष अनुसंधान का श्रेय विभिन्न विदेशी और भारतीय पुरावेत्ताओं को जाता है जिन्होंने इस शिलालेख को पढ़ने और परिभाषित करने का अध्यवसाय किया। कुछ विशिष्ट विद्वानों का उल्लेख हमारे पिछले लेख में है और अधिकांश अन्यों का उल्लेख हमारी पुस्तक में है। उनमें आचार्यश्री का आगणन किया जाना भी अभिप्रेत है यद्यपि यह हमारी कमी है कि उनके तद्विषयक किसी लेख/पुस्तक का अवलोकन हम नहीं कर सके हैं सिवाय कुछ गुरु भक्त विद्वानों के माध्यम से उनके कतिपय विचारों को जानने के।

अपने प्रति जागरूकता के लिये खारवेल अवश्य ही आचार्यश्री के प्रति कृतज्ञ होंगे। परन्तु इतिहास के सामान्य अध्येता आचार्यश्री के आशीर्वाद से पोषित परिकल्पनाओं से भ्रमित होते रहेंगे जिसका संकेत हमने अपने पूर्व प्रकाशित लेख में किया भी है। आचार्यश्री एक वयोवृद्ध प्रभावक दिगम्बर श्रमण हैं और अपने ज्ञान एवं अध्ययन के लिये विख्यात हैं। उनके प्रति अन्य अध्ययनप्रेमी जिज्ञासुओं के समान हम भी विनयावनत हैं।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

स्वास्थ्य-चर्चा

कोष्ठबद्धता (कब्ज़) का उपचार

- स्वामी धर्मानन्द

यह आधुनिक युग की रहन-सहन एवं खान-पान के कारण उत्पन्न होने वाला सर्वव्यापी रोग है। इसे लोग रोग भी नहीं मानते हैं पर यही हमारी अन्य बीमारियों के उत्पन्न होने एवं बढ़ाने में सहायक है।

लक्षण

१. समय पर मल का त्याग न होना।
२. मल का कठिनता से त्याग होना, गांठे बन जाना।
३. गैस का बनना, पेट में अफारा आना, दर्द होना।
४. भूख न लगना।
५. सिर में दर्द या भारीपन का अनुभव होना।
६. वायु का मुंह से डकार अथवा गुदा से (अपान) बाहर निकलना।
७. बाहर निकलने वाली वायु का दुर्गन्धित होना।
८. शरीर व हाथ-पैरों में दर्द।
९. आलस्य।
१०. मुंह में छाले का होना।
११. आँखों के नीचे कालापन होना आदि, आदि।

कारण :

१. समय पर भोजन न करना।
२. अधिक चिकनाई एवं मैदे के खाद्य पदार्थों का उपयोग।
३. भोजन में रेशे की कमी का होना।
४. बासी एवं गरिष्ठ भोजन करना।
५. शारीरिक श्रम का अभाव, व्यायाम न करना।
६. पर्याप्त मात्रा में जल एवं रसों का सेवन न करना।
७. मानसिक तनाव का होना।
८. दवाओं का सेवन।
९. चिन्ता एवं भय का होना।

उपचार :

कब्ज होने पर लगातार दवाओं के प्रयोग द्वारा इसे दूर करने से बचना है। कब्ज उत्पन्न करने वाले उपरोक्त कारणों से बचना।

१. प्रातः समय एक नींबू या दो चम्मच आंवला रस दो गिलास जल से सेवन कर, कुछ देर टहल कर शौच के लिए जायें। यह रोजाना की आदत बनायें।

२. पानी पीने के पश्चात् स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाओं में कमर की चार क्रियाएं करना।

३. नाभि की जांच करना। अगर नाभि स्थान से च्युत हो तो कब्ज भी हो सकती है। दस्त भी लग सकते हैं। इसे क्रिया के द्वारा अपने स्थान पर स्थापित करना।

४. नींबू पानी, नारियल पानी, फल एवं सब्जियों में खीरा, लौकी, पेठा, गाजर, पालक आदि का रस बहुत लाभ करता है।

५. सप्ताह में एक दिन फलाहार पर रहना भी उत्तम उपाय है।

६. रात्रि में किशमिश, मुनक्का एवं अंजीर भिगोकर प्रातः नाश्ते में लेना भी कब्ज दूर करने का उत्तम उपाय है।

७. गेंहू के ज्वारों का रस पुरानी से पुरानी कब्ज को दूर करता है।

८. आसन-प्राणायाम एवं स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियाओं के नियमित अभ्यास से कब्ज नहीं हो सकती।

९. मानसिक तनाव, चिन्ता भय आदि से मुक्त रहने के लिए प्रेक्षाध्यान में दीर्घश्वास प्रेक्षा एवं कायोत्सर्ग का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी है।

१०. भोजन में परिष्कृत (Refined) खाद्य पदार्थों में सफेद चीनी, पॉलिश किये चावल व मैदे से बने पदार्थ, दालें तथा डिब्बे बंद खाद्य पदार्थों से बचना चाहिए।

११. पके हुए बेल के ताजे गूदे को खाने अथवा पानी में घोलकर लेने पर सारा मल बाहर निकाल देता है।

१२. काली हरड़ (छोटी हरड़) को पीसकर काला नमक मिलाकर रात्रि में २ चम्मच पानी से लेने पर कब्ज दूर होता है। यह दवा ऐलोपैथिक दवाओं से बहुत उत्तम है।

१३. बहुत पुराना कब्ज होने पर एरिंड का तेल रात्रि में लेने पर प्रातः बहुत अच्छी तरह से पेट साफ करता है।

१४. अमलतास का गूदा ४-५ बजे सायं पानी में भिगो कर रखें एवं रात्रि में सोने के समय उसका सेवन करने पर प्रातः आसानी से पेट साफ हो जाता है।

१५. खाली पेट प्रातः पेट पर २०-२५ मिनट मिट्टी की पट्टी लगाना या गीली पानी की पट्टी या एनिमा लेना कब्ज का प्राकृतिक उपचार है।

१६. कुछ घरेलू उपचार भी कब्ज को दूर करने में सक्षम हैं :

क. १० ग्राम सनाय पत्ती, ५ ग्राम सौंफ इनको २५० ग्राम पानी में उबालकर छान लें। थोड़ी खांड मिलाकर सोते समय लेवें।

ख. गुलाब के फूल ४० गाम, सैन्धा नमक १० ग्राम, बड़ी हरड़ ६० ग्राम, सौंफ १० ग्राम, सौंठ १० ग्राम, सनाय पत्ती ५ ग्राम, इनका चूर्ण बनाकर ५ ग्राम यानि १ चम्मच रात्रि में सोते वक्त लेवें।

ग. मुलेठी १२५ ग्राम, सनाय पत्ती २०० ग्राम का कपड़छन बारीक चूर्ण बनाकर रखें। ५ से १० ग्राम जल या दूध से रात्रि में सोते वक्त लें। पेट का कड़ा मल कब्ज जन्य दर्द आदि दूर होगा।

घ. सौंठ, पीपल, काली मिर्च, १०-१० ग्राम, छोटी काली हरड़ ६० ग्राम इसे ऐरण्ड के तेल में भून लें काला नमक २५ ग्राम कूट छान कर रात्रि में सोते समय ५ ग्राम जल के साथ लेवें।

च. सनाय फली २/३ को ४-६ घंटे १०० ग्राम पानी में भीगने दें। रात्रि में सोते वक्त लेवें।

छ. सनाय, सौंफ, हरड़, गुलाब के फूल, मिश्री बराबर कूट लें। रात्रि में २० ग्राम भिगो दें। प्रातः ठण्डा छानकर पी लें। २-३ दस्त आसानी से लग जाऐंगे।

(अध्यात्म योग, जून २००६ से साभार)

◆◆◆◆

स्वास्थ्य-ह्रास मत कीजिये

मांस भक्ष श्रीमान ! स्वास्थ्य ह्रास मत कीजिये।
उदर न कब्रिस्तान, बना स्वयं का लीजिये।।
दया धर्म का मूल, हिंसा घोर अधर्म है।
करो प्राणि से प्रेम, यही धर्म का मर्म है।।
दीन-दुखी की हाय से मत, जीवन नर्क बनाइये।
सुन्दर स्वस्थ शरीर हित ही, सद् विचार अपनाइये।।

अण्डे खाकर हाय! भ्रूण हत्या हैं करते।
घोर पाप की आग, मध्य हैं जलकर मरते।।
उस दिशि बढ़ा समाज, केवल मौखिक स्वाद हित,
किन्तु उन्हें नहिं ज्ञात, आह दुखी की अपरमित।
रगड़ प्रगट दावाग्नि, देती सारा वन जला।
त्यों 'अबोध' दुष्कर्म भी तो, देते पुण्यों को गला।।

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'
३७०/२७, हाता नूर बेग, सआदतगंज, लखनऊ-३

जीवन की राह

महावीर तुमने जीवन की राह
हमें बतलायी,
स्वार्थ-बुद्धि पर अपनी उसको
समझ नहीं पायी।
आत्मज्ञान मिलता अन्तर से
तुमने बात कही,
पोथी पत्रों से कदापि वह
मिलता ज्ञान नहीं
मिलता ज्ञान अगर बाहर से
क्यों तुम तप में तपते,
सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने हित
अन्तरतम में रमते।
आत्मजनित वह ज्ञान तुम्हारा
है अतिशय सुखदायी
स्वार्थ-बुद्धि पर अपनी उसको
समझ नहीं पायी।

मुक्ति-मार्ग जो नहीं जानते
मुक्ति उन्हीं से मांगी,
उनके ही वचनों को माना
उनकी ही सेवा की।
शब्दों में की कैद अहिंसा
कर्मकांड रच डाला।
मन माफिक कुछ नियम बनाकर
उसमें निज को ढ़ाला।
कर्मकांड से कर्म-बन्ध की
धार नहीं रुक पायी।
महावीर तुमने जीवन की
राह हमें दिखलायी
स्वार्थ-बुद्धि पर अपनी उसको
समझ नहीं पायी।

हमने दान दिया जो कुछ भी
त्याग नहीं उसमें था,
अभिमानों से प्रेरित था
अनुराग नहीं उसमें था।
नाम तुम्हारा स्वार्थ हमारा
कुछ भी समझ न पाता,
करता वही गुरू कहता जो
और शास्त्र जो गाता।
छलता रहा स्वयं को ही मैं
बना स्वार्थ-अनुयायी।
महावीर तुमने जीवन की
राह हमें बतलायी,
स्वार्थ-बुद्धि पर अपनी उसको
समझ नहीं पायी।

भव सागर की लहरों से ही
हमने वट को मांगा,
और अपरिचित लोगों से ही
अमल-सुधा-घट मांगा।
देखा नहीं स्वयं को अन्तर में
अपने ही मन में,
कस्तूरी-मृग सम सुगंधि को
रहा ढूंढ़ता वन में।
समझा नहीं आत्म सौरभ जो
अपने मन में छायी।
महावीर तुमने जीवन की,
राह हमें बतलायी।
स्वार्थ-बुद्धि पर अपनी उसको
समझ नहीं पायी।

– डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत',
डी-११/६, राजेन्द्रनगर, लखनऊ

चिन्तन-कण

दिगम्बरत्व - सैद्धान्तिक चरम अथवा प्रदर्शनीय वेश

- डॉ. शशि कान्त

शोधादर्श-५५ (मार्च-२००५) में पृ. ५२ पर ३१ मई, १९३१, के **नवजीवन** में प्रकाशित 'दिगम्बरत्व की मर्यादा' के सम्बन्ध में महात्मा गांधी की विवेचना को उद्धृत किया गया था। व्यावहारिक दृष्टि से वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यह विवेचन **जैन** समाज के प्रबुद्ध वर्ग के लिये चिन्तनीय है, इसको दृष्टिगत रखते हुए गांधीजी के इन विचारों को प्रकाशित किया गया।

एक चर्चा का सूत्रपात इस विषय पर हुआ और दिगम्बर आम्नाय के नैष्ठिक प्रबुद्ध विद्वानों द्वारा **शोधादर्श-५६** (जुलाई-२००५) तथा **शोधादर्श-५८** (मार्च-२००६) में गहन चिन्तनयुक्त विचार प्रकट किये गये। डॉ. अनंग प्रद्युम्न कुमार, श्री जमनालाल जैन, श्री मनोहर मारवडकर, सुश्री लीना विनायकिया और डॉ. अनिल कुमार जैन जाने-माने दिगम्बर आम्नायी विद्वान हैं और इनमें से कोई भी मुनि-विद्वेषी नहीं है। उन्होंने अपने जो विचार व्यक्त किये हैं वे आम्नायपरक आस्था को विवेक से सम्पृक्त करते हुए किये हैं। उनमें से किसी का भी आग्रह यह नहीं रहा ध्वनित होता है कि वे अपनी बात अन्तिम सत्य के रूप में कह रहे हैं। वरन् उनका आशय स्पष्ट ही यह है कि दिगम्बर श्रमण संस्था में वर्तमान में जो शिथिलाचार, कदाचार और अविचार लक्षित होता है उसकी ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया जाय, प्रबुद्ध वर्ग को सुधार की दिशा में सकारात्मक सोच के लिये प्रेरित किया जाय, साधु-साध्वी संस्था को सावधान किया जाय और श्रावक-श्राविकाओं को मात्र अन्धश्रद्धा के गह्वर से बाहर निकलकर आज की परिस्थितियों में साधु का क्या स्वरूप हो, इस पर चिन्तन के लिये अवसर दिया जाय।

श्री मारवडकर जी का पुनः 'दिगम्बरत्व की मर्यादाओं' पर चिन्तन प्राप्त हुआ है जिसमें उन्होंने शास्त्रीय दृष्टि से मुनि पद पर दिगम्बरत्व की संपुष्टि की है, यद्यपि श्रमण संस्था में व्याप्त शिथिलाचार से वह स्वयं भी सन्तप्त हैं।

भोपाल से श्री शान्तिलाल जैन जो मध्य प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड के भूतपूर्व एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर हैं, ने **स्थूलिभद्र सन्देश** (५ मई २००६) में **शोधादर्श** से महात्मा गांधी के विचारों को पुनः प्रकाशित किये जाने के सम्बन्ध में, ध्यान आकर्षित किया है। **स्थूलिभद्र सन्देश** हमारे पुस्तकालय में भी आता है। संयोग से यह विशुद्ध श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नायपरक पत्रिका है। उन्होंने जिस आशय से उक्त लेख को प्रकाशित किया वह उनकी आम्नायपरक कटिबद्धता को कदाचित् निदर्शित करता है, तथापि कोई भी पत्र-पत्रिका यदि हमारी पत्रिका से कोई सामग्री उद्धृत करे तो उसमें आपत्ति नहीं की जा सकती।

श्री शान्तिलाल जी ने कृपा कर स्व. बैरिस्टर चम्पतराय जैन के Nudity of Jaina Saints के द्वितीय संस्करण दिनांक ६.३.१९३२ की जीरॉक्स प्रति उपलब्ध कराई है, जिसके लिये हम उनके आभारी हैं। इसी अंक में हमारे पिताजी इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'दिगम्बरत्व का महत्व' प्रकाशित है जिसमें उन्होंने बैरिस्टर साहब द्वारा प्रतिपादित जैन श्रमणों के दिगम्बरत्व के प्रति आग्रह को इतिहास और पारम्परिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया है और बैरिस्टर साहब द्वारा अपने ट्रैक्ट में जो विवेचन किया गया है उसको संक्षेप में सहज शैली में प्रस्तुत किया है। यहाँ यह भी उल्लखनीय है कि स्वयं गांधी जी ने बैरिस्टर साहब के दिनांक १-७-१९३१ के पत्र (जो गांधी जी के नवजीवन में प्रकाशित विचारों के सम्बन्ध में था) के उत्तर में दिनांक ३०-७-१९३१ के अपने पत्र में निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिया था -

"I have your letter of 1st July for which I thank you. I dare not enter into a discussion with you, I have simply expressed my own humble opinion in the most cautious manner possible for me. Every argument you have advanced was before my mind's view when I gave the opinion. In the words of Saint Paul, many things may be lawful but may not be expedient."

अब गांधीजी और बैरिस्टर साहब दोनों ही इतिहास की विभूतियां हैं और उनके विचारों का अनुशीलन, चिन्तन और अनुसंधान के लिये तो हम उपयोग कर सकते हैं परन्तु शास्त्रार्थ के लिये नहीं।

यह युग विचारशीलता का है जिसमें यह अपेक्षित है कि सभी बातों पर खुले मस्तिष्क से, उन्मुक्त रूप से और विवेकपूर्ण विधा से विचार किया जाय। इसमें कोई विवाद नहीं है कि दिगम्बरत्व एक आदर्श स्थिति है परन्तु यह एक सैद्धान्तिक चरम की स्थिति है, या यों कहें कि एक वैचारिक प्रकर्ष का विन्दु है। सैद्धान्तिक चरम आस्था का आधार हो सकता है। जिन विद्वानों ने इस चर्चा में भाग लिया है वे सभी नैष्ठिक श्रावक-श्राविका हैं और मुनि धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष के सम्बन्ध में उन्होंने कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया है। उनके चिन्तन का विषय यह है कि जो व्यवहार्य नहीं है उसका किस प्रकार वर्तमान क्षेत्र और काल की परिस्थितियों से सामंजस्य किया जाय। सभी विद्वान इस बात से चिन्तित हैं कि श्रमण संस्था आज जिस रूप में है वह सिद्धान्त और आचार दोनों ही दृष्टियों से वांछनीय नहीं कही जा सकती, परन्तु उसका सुधार किये जाने के लिए न तो साधु वर्ग की ओर से, न त्यागी वर्ग की ओर से, न पंडित वर्ग की ओर से और ना ही समाज के नेतृत्व वर्ग एवं पत्रकार समुदाय की ओर से, तथा सामान्य जनों की ओर से भी कोई पहल या प्रयास किया जा रहा है। हमारा विनम्र निवेदन है कि सभी प्रबुद्धजन इस सम्बन्ध में गंभीरतापूर्वक विचार करें और जैन धर्म को आस्था के नाम पर रूढ़िगत उन्माद से बचायें। चर्चा में विद्वान मनीषियों ने रुचि प्रदर्शित की है यह स्वागत योग्य है। यदि मात्र पिष्टपेषण के बजाय उन्मुक्त चिन्तन की ओर यह चर्चा समाज को उन्मुख करती है तो चर्चा सार्थक होगी और दिगम्बर जैन धर्म नामशेष होने से बच जायगा।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००५-२००६

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., का गठन सन् १९७६ ई. में २४वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का २५००वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिये राज्य सरकार द्वारा गठित **श्री महावीर निर्वाण समिति, उ.प्र.,** की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीकरण कराया जाता रहा है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष २००४-२००५) **शोधादर्श-५६** (जुलाई २००५) के पृष्ठ ४६-५० पर प्रकाशित है। यहाँ वर्ष २००५-२००६ (१ अप्रैल, २००५ से ३१ मार्च, २००६) का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

समिति की प्रमुख प्रवृत्तियों का इस वर्ष का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि वर्ष के प्रथम पाद में ही दिनांक २५ जून, २००५ ई. को संस्था के प्राण, इसके संस्थापक महामंत्री एवं **'शोधादर्श'** के प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन जी, जो अपनी दारुण रुग्णावस्था के बावजूद अन्त तक अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक सम्यक् निर्वहन करते रहे, हमसे सदा के लिये बिछुड़ गये। समिति की प्रबन्ध समिति ने दिनांक १० जुलाई, २००५ ई. को सम्पन्न अपनी आपातकालीन बैठक में महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन जी के निधन से उत्पन्न कार्यरोध को समाप्त करने हेतु सर्वसम्मति से, आगामी निर्वाचन तक, संयुक्त मंत्री के रूप में कार्यरत रहे मुझे अर्थात् रमा कान्त जैन को महामंत्री के पद का कार्यभार सौंपा तथा मेरी रिक्ति में संयुक्त मंत्री के पद पर प्रबन्ध समिति के सदस्य श्री नलिन कान्त जैन को मनोनीत किया। श्री अजित प्रसाद जी के अभाव की पूर्ति तो कठिन है, तदपि उनके पद-चिन्हों पर चलते हुए अपनी सीमित क्षमतानुसार समिति की सभी मुख्य प्रवृत्तियों के सुचारू संचालन का मैंने प्रयास किया। श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन जी की पुण्य स्मृति में उनकी पुत्रवधु श्रीमती माया जैन ने समिति को रु. १,५०१/- की धनराशि प्रदान की जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रही -

१. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना २ जून, १९७६ ई. को **श्रुत पंचमी** के दिन की गई थी और इसका विधिवत् उद्घाटन २३ अक्टूबर, १९७६, को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के करकमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये कक्षों में चल रहा है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के अपने सदस्यों की संख्या ७० रही। चारबाग ही नहीं, आसपास की कालोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिये अन्य भारतीय धर्मों, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण साहित्य है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में हमारा पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ व कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अनेक शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिये लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष २००५-२००६ में पुस्तकालय में ४७ पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें से २७० पुस्तकें, तथा स्टील का एक बुक केस, राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तक कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में प्राप्त हुए। समिति ने स्वयं रु. ७७७.५० पैसे मूल्य के ११ ग्रन्थ क्रय किये।

स्व. अजित प्रसाद जैन जी की इच्छानुसार उनके निजी संग्रह से १०३ पुस्तकें तथा मैंने स्वयं निजी संग्रह से २८ पुस्तकें पुस्तकालय को भेंट की। समिति के सम्मानीय सदस्य डॉ. ओम प्रकाश अग्रवाल जैन ने २१ पुस्तकें तथा समिति के सम्माननीय सदस्य स्व. कैलाश भूषण जिन्दल के सुपुत्र श्री आलोक जिन्दल ने पुस्तकालय को १० ग्रन्थ भेंट किये और अन्य विभिन्न महानुभावों से २८ ग्रन्थ पुस्तकालय को भेंट स्वरूप प्राप्त हुए। साथ ही डॉ. एस. के. जैन, सुपुत्र श्रीचन्द्र कुमार जैन वैद्य, १०९/११, नया गांव, माडल हाउस, लखनऊ ने पुस्तकालय को रु. २,०००/- की धनराशि प्रदान की। हम इन सभी महानुभावों के आभारी हैं।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में ८७ धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र-पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक और षट्मासिक) समिति की शोध-पत्रिका **'शोधादर्श'** के परिवर्तन में प्राप्त हुईं।

पुस्तकालय-वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः ५० पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय-वाचनालय का समय प्रातः ९.०० से अपराह्न २.०० बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय-वाचनालय बन्द रहता है। पुस्तकालय-वाचनालय का कार्य पूर्ववत् पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम. ए., द्वारा सुचारू रूप से देखा जाता रहा।

२. शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित चातुर्मासिक शोध-पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन फरवरी १९८६ में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य सम्पादक इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून १९८८ में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक ७ से प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व डॉ. शशिकान्त ने बड़ी योग्यता से निभाया तथा अंक ३० (नवम्बर १९९६)से अंक ५६ तक प्रधान सम्पादक का कार्यभार श्री अजित प्रसाद जैन ने बड़ी कुशलतापूर्वक संभाला। इस पत्रिका के सम्पादन से यद्यपि मैं प्रारंभ से ही सम्बद्ध रहा, आदरणीय श्री अजित प्रसाद जैन जी के निधन के उपरान्त अंक ५७ (नवम्बर २००५) से इसके सम्पादन का सम्पूर्ण दायित्व मैं डॉ. शशि कान्त जी के मार्गदर्शन तथा सर्वश्री नलिन कान्त जैन, सन्दीप कान्त जैन एवं अंशु जैन 'अमर' के सहयोग से निर्वहन कर रहा हूँ। यह सन्तोष का विषय है कि पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक-सांस्कृतिक शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। समय से प्रकाशित वर्ष के तीनों अंकों (५५-५६-५७) में २६८ पृष्ठों में प्रकाशित ज्ञानप्रद, उपयोगी पठनीय सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है। इसमें निहित निर्भीक बेबाक टिप्पणियों, शोधपूर्ण सामग्री तथा इसकी सादगीपूर्ण छवि से प्रभावित हो कुछ प्रशंसक पाठकों ने इस वर्ष रु. ६,२५४ की राशि भेंट स्वरूप प्रदान की। अनेक गणमान्य विद्वान लेखक-रचनाकार इसमें अपने लेख-रचना आदि प्रकाशित होना अपना अहोभाग्य मानते हैं और पत्र-पत्रिकाएं इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने में गौरव का अनुभव करती है। **शोधादर्श** का अंक ५७ संस्थापक महामंत्री स्व. श्री अजित प्रसाद जैन जी की स्मृति में श्रद्धांजलि स्वरूप

प्रकाशित किया गया जिसमें उनके ८१ प्रशंसक पाठकों एवं मित्रों द्वारा उनको अपनी भावभीनी विनयांजलि अर्पित की गई और **शोधादर्श** का अंक ५८ मुख्यतया गोम्मटेश्वर भ. बाहुबली, जिनकी मूर्ति का श्रवणबेगोल में महामस्तकाभिषेक फरवरी २००६ ई. में सम्पन्न हुआ, को समर्पित रहा। जिन महानुभावों से **शोधादर्श** के लिये विशेष सहायता प्राप्त हुई उनमें उल्लेखनीय हैं - समिति के आजीवन सदस्य श्री कैलाशचंद जैन, कोलकाता, जिन्होंने रु. ३,०००/- तथा डॉ. (श्रीमती) सन्तोष जैन, सेरीटॉस (यू.एस.ए.) जिन्होंने अपने पिताजी स्व. श्री अजित प्रसाद जैन जी की पुण्य स्मृति में **'शोधादर्श'** को रु. २,०००/- भेंट किये। समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन जी ने अपनी ओर से २५ महानुभावों को इस वर्ष पत्रिका भेजने हेतु रु. १,२५०/- की राशि प्रदान की और श्री कैलाशचन्द जैन, कोलकाता, अपनी ओर से विगत कई वर्षों से १३ महानुभावों/संस्थाओं को **शोधादर्श** भिजवा रहे हैं। हम इन सभी महानुभावों के आभारी हैं।

३. तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल ४४ छात्र-छात्राओं को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. १६,१६४/- का व्यय किया गया। हमारे उपमंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी ने इस कार्य के सम्पादन में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिये में उनका विशेष आभारी हूँ।

४. महावीर जन कल्याण निधि

इस वर्ष तीन असहाय धर्मनिष्ठ महिलाओं को वस्त्र-औषधि हेतु सहायता प्रदान करने पर रु. ३,१५०/- का व्यय किया गया। हमारे संयुक्त मंत्री श्री नलिनकान्त जी ने इस निधि का कार्य सम्पादन करने में बहुमूल्य योगदान किया जिसमें लिये मैं उनका आभारी हूँ।

५. अन्य प्रवृत्तियां

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, १२ जून, २००५ ई. को 'श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस' तथा श्रावण कृष्ण प्रतिपदा, २२ जुलाई, २००५ ई. को 'वीर शासन जयन्ती' श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में मनाये गये। २८ जून, २००५ ई. को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के संस्थापक महामंत्री स्व. श्री अजित प्रसाद जैन के प्रति श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया तथा १ जनवरी, २००६ ई. को शोध पुस्तकालय में उनके चित्र का अनावरण किया गया।

दिनांक २८ जुलाई, २००५ ई. को जिलाविद्यालय निरीक्षक, लखनऊ, को वर्ष २००५-२००६ के अनुदान हेतु निर्धारित प्रपत्र पर प्रार्थनापत्र भेजा गया। दिनांक ६ अगस्त, २००५ ई. को रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ.प्र., लखनऊ को समिति की प्रबंध समिति की बैठक दिनांक १० जुलाई, २००५ ई. में महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन के निधन से उत्पन्न कार्य अवरोध को दूर करने के निमित्त लिये गये निर्णयों से अवगत कराया गया। दिनांक २६ फरवरी, २००६ ई. को राजा राममोहन रायपुस्तकालय प्रतिष्ठान के क्षेत्रीय अधिकारी श्री बी.एस. पोसवाल द्वारा पुस्तकालय का निरीक्षण किया गया। दिनांक २ मार्च, २००६ ई. को रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ.प्र. लखनऊ को समिति के रजिस्ट्रेशन के नवीनकरण का प्रार्थना पत्र भेजा गया।

६. लेखे की स्थिति

समिति के लेखों का आडिट इस वर्ष भी ए. जिन्दल एण्ड कम्पनी, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय विवरणी प्रस्तुत की गईं।

शासन से प्राप्त उपर्युक्त पुस्तक अनुदान और स्टील बुक केस तथा कतिपय दाताओं से भेंटस्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु. १,२०,२५०.८० पैसे रहीं (इसमें फिक्स्ड डिपाजिट पर परिपक्वता पर प्राप्त लाभ स्वरूप रु. १८,३०७/- सम्मिलित है जिन्हें ध्रौव्य फण्ड के रूप में फिक्स्ड डिपाजिट में पुनः निवेशित किया गया तथा रु. ८००/- पुस्तकालय सिक्योरिटी मनी भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु. ७२,१४८.२५ पैसा हुआ (इसमें पुस्तकालय-वाचनालय कक्षों का रु. ८००/- प्रतिमास की दर किराया रु. ६,६००/- सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट को पूर्व में दी गई एक लाख रुपये की अग्रिम धनराशि से होता है)। प्राप्ति-व्यय की विवरण तालिका संलग्न है।

समिति के शोध पुस्तकालय में वर्ष के अन्त में ३१ मार्च, २००६ ई. को रु. १,६०,६७४/- मूल्य का साहित्य एवं फर्नीचर आदि उपलब्ध रहा।

७. आभार

समिति के अध्यक्ष सम्माननीय श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन मुझे निरन्तर मिलता रहा जिसके लिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी एवं श्री नरेशचन्द्र जी, कोषाध्यक्ष श्री बिजयलाल जी, संयुक्त मंत्री श्री नलिन कान्त जी, उपमंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी और श्री रोशनलाल जी नाहर, **शोधादर्श** के सलाहकार डॉ. शशिकान्त जी एवं सह सम्पादक त्रय, तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिये मैं आभारी हूँ।

समिति के कार्यों में जो कुछ भी प्रगति हुई उसका श्रेय इन सब महानुभावों को है और जो त्रुटियां रह गईं उनका दायित्व मुझ पर है। **- रमा कान्त जैन**

महामंत्री

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

STATEMENT OF RECEIPTS & PAYMENTS FOR THE YEAR ENDING 31st MARCH, 2006

RECEIPTS		*Rs. P.*	*PAYMENTS*		*Rs. P.*
Balance b/d:			**Research Library.**		
F.D.R.s	18,17,863.00		Salary Libr. Asstt	20,700.00	
Savings Bank	9,296.54		Salary Cleaner	1,530.00	
Cash in Hand	8,347.25	18,35,506.79	Contingencies	1,918.00	
Research Library:			**Stationery & Prtg.**	**769.75**	
Security Deposit	800.00		Postage	1,416.00	
Subscription	1,420.00		Books	777.50	
Donation	6,494.10		Refund of Security	8000	27191.25
Misc. Receipts	387.50	9,101.60	**Magazine Expenses:**		
Magazine:			Printing & Paper	25,152.00	
Subscription	5570		Postage	3,829.00	
Donation	6254	11,824.00	**Other Expenses**	200.00	29,181.00
Membership Fee		1,052.00	M.J.K Nidhi Expenses		3,150.00
Donation		1,501.00	T. C.S.Kosh Scholarship Exp.		16,164.00
interest on F.D.R.s		75,563.20	I.T. Counsel's Fee		650.00
Interest on Savings Bank		1,606.00	Audit Fee		600.00
F.D.R. Maturity interest		18,307.00	Registration Renewal Fee		200.00
Scholarship Amt. received back undelivered		990.00	Refund of Excess Intt.		11.00
Postage stamps recd, with Scholarship Forms		306.00	Miscellaneous Exp.		1.00
			Balance c/d:		
			F.D.R.s	18,61,170.00	
			S.B.Acoount	11,554.74	
			Cash in Hand	5,384.60	18,78,609.34
		19,55,757.59			**19,55,757.59**

रमा कान्त जैन
महामंत्री
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
लखनऊ

Lucknow, April 30, 2006

Compiled from information and explanation furnished

For A. Jindal & Co.
Chartered Accountants
Alok Jindal

साहित्य सत्कार

वसन्तविलास महाकाव्य का तत्त्वानुशीलन : ले. डॉ. केशवप्रसाद गुप्त; प्र. शिल्पी प्रकाशन, ११ सी/७, मीरापुर, इलाहाबाद-२११००३; २००५ ई.; पृ. ३०८; मूल्य रु. १५३/-

पी-एच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत इस शोधप्रबन्ध में डॉ. केशव प्रसाद गुप्त ने बालचन्द्र सूरि द्वारा विक्रम सं. १२९६-१३२० (ई. सन् १२३९-६३) के बीच संस्कृत में रचे गये ऐतिहासिक महाकाव्य **वसन्तविलास** का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह गुजरात के चालुक्यवंशी वाघेला राजा वीरधवल के महामात्य वस्तुपाल की कीर्तिगाथा से संबंधित है। वस्तुपाल का ही दूसरा नाम 'वसन्तपाल' अथवा 'वसन्त' भी था और उसी के अनुसार इस महाकाव्य का नामकरण किया गया है। आबू के प्रसिद्ध दिलवाड़ा जैन मंदिरों के निर्माण का श्रेय इन्हीं महामात्य वस्तुपाल और इनके अग्रज तेजपाल को है। ये प्राग्वाटवंशी वणिक थे परन्तु दुर्द्धर योद्धा और कुशल प्रशासक थे, साथ ही निष्ठावान जैन धर्मानुयायी थे। इससे विदित होता है कि १२वीं-१३वीं शती ईस्वी में गुजरात में जाति प्रथा और धर्म क्षत्रिय-कार्य में बाधक नहीं थे।

अध्ययन ११ अध्यायों में विभक्त है जिनमें **वसन्तविलास** का कवि परिचय, काव्य-परिचय, वस्तु-विन्यास, चरित्र-चित्रण, काव्य-सौन्दर्य (भावपक्ष), काव्य-सौन्दर्य (कलापक्ष), प्रकृति-चित्रण, ऐतिह्य तथ्य, लोक-चित्रण और तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, तथा उपसंहार में बालचन्द्र सूरि के व्यक्तित्व तथा महाकाव्य के साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। ३ परिशिष्टों में क्रमशः सहायक ग्रन्थसूची, जैन-संस्कृत वाङ्मय में महामात्य वस्तुपाल, और जैन संस्कृत वाङ्मय के ऐतिहासिक महाकाव्यों का विवरण, दिया गया है।

ऐतिहासिक महाकाव्यों में **वसन्तविलास** प्रामाणिकता की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखता है। गुजरात के राजनैतिक इतिहास पर ही नहीं, १२वीं-१३वीं शती ईस्वी के गुजरात के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन पर भी यह विशेष प्रकाश डालता है। डॉ. गुप्त ने तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत कर इस क्षेत्र में विशिष्ट अनुसंधान किया है जिसके लिये वह साधुवाद के पात्र हैं। गुजरात के तत्कालीन इतिहास के जिज्ञासुओं के लिए यह अध्ययन उपयोगी सामग्री प्रदान करेगा।

हिन्दी साहित्यकार संदर्भ कोश (भाग-२) : सं. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल तथा डॉ. मीना अग्रवाल; प्र. हिन्दी साहित्य निकेतन, १६ साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.)- २४६७०१; २००६ ई.; पृ. ५१०; मूल्य रु. ७००/-

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल और उनकी सहधर्मिणी डॉ. मीना अग्रवाल का विगत कई वर्षों का सश्रम प्रयास प्रस्तुत **हिन्दी साहित्यकार संदर्भ कोश (भाग-२)** के प्रकाशन से सार्थक हुआ। १९९७ ई. में प्रकाशित **हिन्दी साहित्यकार कोश** इस दिशा में उनका प्रथम प्रयास था। प्रस्तुत संदर्भ कोश उससे कहीं अधिक विस्तारपूर्ण है। प्रस्तुत संस्करण में प्रायः ३००० हिन्दी साहित्य सेवियों का परिचय संकलित है। अपने निवेदन में संपादक-द्वय ने इस प्रकार के सन्दर्भ कोश की आवश्यकता को ठीक ही इंगित किया है कि उससे भारत के विभिन्न प्रदेशों में कार्य कर रहे साहित्यसेवियों को परस्पर सम्पर्क करने में सुविधा होगी - विधा और विषय वैशिष्ट्य, दोनों ही दृष्टियों से। प्रामाणिकता की अपेक्षा से परिचय-विवरण साहित्यकारों से एक प्रारूप के माध्यम से प्राप्त किये गये थे। मेरा स्वर्य का तथा अनुज रमा कान्त जैन, पुत्र राजीव कान्त जैन और पुत्री डॉ. अलका अग्रवाल के परिचय सम्मिलित हैं जिसके लिए हम संपादक-द्वय के आभारी हैं।

परिचय अकारादि क्रम में दिये गये हैं। यदि अनुक्रमणिका में अथवा अन्यथा उन्हें सूचीबद्ध कर दिया जाता तो सहजता में वृद्धि होती। संपादकों द्वारा यह अपेक्षा की गई है कि सम्मिलित साहित्यकार अपने विषय में विवरण को अद्यावधि कराते रहें। यह भी अभीष्ट है कि वे अपनी जानकारी से उन साहित्यकारों की सूचना संपादकों को दे दें जो उल्लिखित होने से रह गये हैं ताकि उनके विषय में विवरण प्राप्त कर आगामी संस्करण में परिचय दिया जा सके।

नमामि स्मारिका : सं. प्रो. नलिन के. शास्त्री; प्र. श्री १००८ चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, देहरा-तिजारा (राजस्थान); २००५ ई.; पृ. ३२०+XVi, सचित्र; मूल्य रु. २५१/ -

यह स्मारिका उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी के १९९८ ई. में अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा (जि.अलवर, राजस्थान) में सम्पन्न वर्षावास के प्रसंग से मूलतः सम्बंधित है। वर्षावास के पहले फरवरी-मार्च में आयोजित देहरा के जैन मन्दिर में चन्द्रप्रभु जिनबिम्ब पंचकल्याणक एवं मानस्तम्भ प्रतिष्ठा महोत्सव का विवरण, श्रुत संवर्द्धन पुरस्कारों के संबंध में ज्ञातव्य और नवम्बर १९९८ में सम्पन्न जैन डाक्टरों के सम्मेलन की रिपोर्ट, भी समाविष्ट हैं।

प्रो. नलिन के. शास्त्री ने 'आत्म निवेदन' में स्मारिका के प्रतिपादन की दिशा और विधा का संकेत किया है। खण्ड-१ में राजनेताओं के सन्देश हैं। खण्ड-२ में चन्द्र-अर्चना के अन्तर्गत भगवान चन्द्रप्रभु का स्तवन और उनके संबंध में पौराणिक-ऐतिहासिक-पुरातात्विक संदर्भों पर अनुसंधानात्मक लेख हैं जिनमें 'चन्द्रप्रभु - इतिहास और पुरातत्व के आलोक में' विषयक मेरा लेख भी सम्मिलित है। खण्ड-३ में अतिशय क्षेत्र तिजारा का ऐतिहासिक और सामयिक परिप्रेक्ष्य में विस्तृत परिचय है। खण्ड-४ 'ज्ञान सिन्धु' उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी की प्रभावना को समर्पित है जिसमें स्वयं प्रो. नलिन शास्त्री की भी काव्य सौष्ठव से परिपूर्ण 'ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते' विनयांजलि है। अन्तिम खण्ड-५ में विविध 'जैन धर्म : जन धर्म' के अन्तर्गत जैन धर्म की ऐतिहासिकता और जैन सिद्धान्त एवं आचार की उपादेयता विषयक लेख हैं। ग्रन्थ सचित्र है। शिल्पांकनों के चित्रों के अतिरिक्त तिजारा क्षेत्र के, उपाध्यायश्री की चर्या के, तथा विविध आयोजनों के रंगीन चित्रों से स्मारिका प्रभूत रूप से सज्जित है। उपाध्यायश्री के प्रवचनांश भी यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं।

डॉ. डी. सी. जैन द्वारा अखिल भारतीय जैन डाक्टर सम्मेलन की रिपोर्ट दी गई है। प्रेक्टिसिंग और विशेषज्ञ डाक्टरों द्वारा एक विशिष्ट पारम्परिक आस्थापरक संयोजन प्रस्तुत किया गया जिसका चिकित्सकीय विज्ञान से कदाचित् ही समन्वय था। मधु (शहद) निर्दोष पुष्प रस है, परन्तु आस्थावान डाक्टरों ने उसके विकल्प रूप में चीनी की चाशनी की संस्तुति की। उपाध्यायश्री के आशीर्वाद से सभी श्रावक-श्राविका आस्था के प्रवाह में निमग्न हो सन्मार्ग की ओर उन्मुख हों, यह **नमामि स्मारिका** का आशय है। विषय-नियोजन और सुन्दर प्रकाशन के लिए सभी लेखकों, सम्पादक और प्रकाशक को धन्यवाद! प्रति हमें कैलाशनगर, दिल्ली के श्री कुलदीप जैन के सौजन्य से प्राप्त हुई, हम उनके आभारी हैं।

स्वतंत्रता संग्राम में जैन (प्रथम खण्ड) : ले. डॉ. कपूरचंद जैन और डॉ. ज्योति जैन; प्र.सर्वोदय फाउन्डेशन, स्टाफ क्वार्टर ६, कुन्दकुन्द जैन (पी.जी.) कालेज, खतौली-२५१२०१; द्वितीय संस्करण २००६ ई.; पृष्ठ ५२८+८; मूल्य रु. ३००/-

डॉ. कपूरचंद जैन और उनकी सहधर्मिणी डॉ. ज्योति जैन द्वारा प्रणीत **स्वतंत्रता संग्राम में जैन (प्रथम खण्ड)** का पहला संस्करण २००३ ई. में प्राच्य श्रमण भारती द्वारा प्रकाशित किया गया था और उसका परिचय/समीक्षा श्री रमा कान्त जैन द्वारा **शोधादर्श-५३** (जुलाई २००४) में पृ. ६२-६३ पर दिये गये थे।

प्रस्तुत द्वितीय संस्करण २००६ ई. में पूर्णतः परिवर्तित और परिवर्धित रूप में प्रकाशित हुआ है। प्रथम संस्करण के १०-पृष्ठीय उपक्रम में लेखक-द्वय ने इस ग्रन्थ के प्रणयन का आशय स्पष्ट किया है और उसके लिए जिन महानुभावों से प्रोत्साहन मिला उनका उल्लेख किया है। द्वितीय संस्करण के २-पृष्ठीय उपक्रम में *साधु-समाज* से प्राप्त आशीर्वाद को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है, और पृ. iv-v पर ग्रन्थ के प्रारंभ में ही सन्त शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज को सचित्र सादर-सविनय-सश्रद्धा-सनमोऽस्तु काव्यमय समर्पण है।

प्रतिपाद्य विषय है १८५७ से १९४७ ई. तक ९० वर्षों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जैन धर्मानुयायी समाज/समुदाय का योगदान। प्रस्तुत प्रथम खण्ड में विशेषतः मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के जैन स्वतंत्रता सेनानियों का परिचय अभिप्रेत है, परन्तु हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ के भी कुछ परिचय हैं। संकेत सूची और संदर्भ ग्रन्थ सूची के अतिरिक्त प्रतिपाद्य सामग्री ५ उपक्रमों और ८ परिशिष्टों में प्रस्तुत है। उपक्रमों में क्रमानुसार- १. बोलते शब्द चित्र (जैनों के अवदान को रेखांकित करते हुए १९४७ ई. तक भारत के इतिहास की रूपरेखा); २. स्वतंत्रता आन्दोलन का १८५७ से १९४७ ई. तक सिंहावलोकन; ३. १८५७ से १९४७ ई. तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं; ४. बीस अमर जैन शहीदों का विवरण; और ५. ७५० जैन स्वतंत्रता सेनानियों का परिचय, संकलित हैं। परिशिष्टों में- १. मध्यप्रदेश और राजस्थान के उन सेनानियों के नाम जिनका परिचय उपलब्ध नहीं हो सका; २. संविधान सभा; ३. आजाद हिन्द फौज; ४. जैन पत्रकारिता; ५. राष्ट्रीयता; ६. अगस्त आन्दोलन और स्याद्वाद विद्यालय; ७. स्त्रियों की क्रान्ति में भागीदारी; और ८. भगवान महावीर और महात्मा गांधी - जब्तशुदा लेख, से संबंधित सामग्री संकलित है।

लेखक-द्वय ने बड़े परिश्रम से यह सामग्री संकलित की है और सुरुचिपूर्ण ढंग से उसकी प्रस्तुति भी की है। आवश्यक चित्रों, रेखांकनों और फोटो, तथा नयनाभिराम टाइटिल कवर और डस्ट-कवर से उसे सज्जित भी किया है। उनका श्रम अभिनन्दनीय है और जो पुरस्कार व सम्मान इस उपलक्ष में उन्हें प्रदान किये गये हैं वह सब सर्वथा उचित हैं।

अन्य स्रोत सामग्री के साथ ही इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के ग्रन्थों का सम्यक् उपयोग किया गया है जिसकी अभिस्वीकृति लेखक-द्वय ने की है। श्री रमा कान्त जैन ने **शोधादर्श-५३** में अपनी समीक्षा में महात्मा भगवानदीन को सम्मिलित करने का सुझाव दिया था। **शोधादर्श-५६** (जुलाई-२००५) में महात्मा भगवानदीन पर श्री रमा कान्त जैन का लेख भी है जो स्वतंत्रता संग्राम में उनके अवदान को रेखांकित करता है। उचित होता यदि भगवानदीन जी की उपेक्षा नहीं की जाती।

जब इस प्रायोजन का विचार डॉ. कपूरचंद जैन को सूझा था, तभी उन्होंने हम से परामर्श किया था और कुछ सुझाव हमने दिये भी थे, यथा - कालेपानी की सजा प्राप्त जैन क्रान्तिकारी जो अण्डमान की कालकोठरियों में मर-खप गये, का परिचय दिया जाना। मारवाड़ी पुस्तकालय दिल्ली से सम्बद्ध क्रान्तिकारी जैन युवकों का परिचय और उस परिप्रेक्ष्य में ब्रिटिश सरकार द्वारा जैन युवकों को क्रान्तिकारी पथ से दिग्भ्रमित करने एवं समाज को अन्धश्रद्धा में ढकेलने के लिए आचार्य शान्तिसागर का दिल्ली एवं उत्तर भारत में आविर्भाव, पर अनुसंन्धान भी अभिप्रेत था। उस समय तक कुछ ऐसे व्यक्ति भी जीवित थे जिन्होंने गुमनामी में ही अपना योगदान किया और उनका सम्पर्क सूत्र सूचित किया था। राष्ट्रीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण घटनाओं में मई १९०६ में अण्डमान में कालकोठरियों का निर्माण जहां कालेपानी की कठोर सजा पाये क्रान्तिवीर स्वतंत्रता सेनानी विशेष यंत्रणा के साथ मर-खप जाने के लिये भेजे जाते थे, का उल्लेख कदाचित् अनावधानतावश छूट गया है। उसके पहले ऐसे बाग़ी अदन के किले में बन्द रखे जाते थे। यह भी उचित होता कि वे खारवेल पर प्रकाशित हमारी पुस्तक और तद्विषयक **शोधादर्श ४०-४२** व **५६** में प्रकाशित सामग्री को देख लेते। लेखक द्वय उपरोक्त संवीक्षाओं को कृपया अन्यथा नहीं लेंगे और आगे इन पर समुचित विचार करना चाहेंगे। हमारा नामोल्लेख उन्होंने सहयोगकर्ताओं में किया है, इसके लिए हम आभारी हैं। उनके श्रमसाध्य प्रयास के लिए उनका हार्दिक अभिनन्दन है।

- डॉ. शशि कान्त

सारस्वत मनीषीः प्रस्तुति प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी, वाराणसी; प्र.गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति, श्रवणबेलगोल; २००६; पृ.१४८ -सजिल्द।

श्रवणबेलगोल स्थित गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी की भव्य प्रतिमा के १२ वर्षीय महामस्तकाभिषेक के सुअवसर पर महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति द्वारा एक पाँच दिवसीय अखिल भारतीय जैन विद्वत् सम्मेलन का दिनांक २८ दिसम्बर, २००५ से १ जनवरी, २००६ तक आयोजन किया गया। सम्मेलन में निमंत्रित मनीषियों के अनुपम योगदान को देखते हुए उनके व्यक्तित्व-कृतित्व का संक्षिप्त विवरण इस पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत है। निःसन्देह १४२ जैन विद्या सेवी मनीषियों के योगदान से परिचित कराने में यह पुस्तक सहायक होगी। पुस्तक के सुचारु संयोजन के लिये बन्धुवर प्रेमी जी साधुवाद के पात्र हैं।

जैन विद्या के विविध आयाम : सं. प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी, वाराणसी; प्र.गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति, श्रवणबेलगोल; २००६; पृ.२०४।

गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी की अतिशयकारी प्रतिमा के महामस्तकाभिषेक के प्रसंग में महोत्सव समिति द्वारा आयोजित पांच दिवसीय विद्वत् सम्मेलन हेतु श्रुत सेवा में समर्पित शताधिक मूर्धन्य जैन विद्वान एवं शोध-अध्येताओं से आमंत्रित ८६ शोध आलेखों का सार-संक्षेप इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है। सर्वाधिक तेरह आलेख तो विभिन्न तीर्थंकरों की पावन पंचकल्याणक भूमियों के विषय में लिखे गये हैं। 'जैन संस्कृति एवं साहित्य के विकास में दक्षिण भारत का योगदान' विषयक श्री रमा कान्त जैन का आलेख अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को अपने में समेटे हुए है। अन्य विद्वानों के शोध-निष्कर्ष भी पठनीय हैं एवं अग्रतर अनुसंधान को प्रेरित करते हैं। पुस्तक संग्रहणीय है। इसके सम्पादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

पश्चाताप : रच. डॉ. हुकमचंद भारिल्ल; प्र. पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर; २००६; पृ. ८०; मूल्य रु. ६/-

अनेकानेक उपाधियों से विभूषित डॉ. हुकमचद भारिल्ल द्वारा १७ वर्ष की अल्पायु में रचित यह खण्ड काव्य ५५ वर्षों के दीर्घ अन्तराल के पश्चात् उनके ७१वें जन्म-दिवस पर प्रकाशित हुआ है। महासती सीताजी की अग्नि-परीक्षा लिये जाने से उनके साथ हुए अन्याय के कारण श्री राम को जिस पीड़ा का अनुभव हुआ, जो पश्चाताप का अनुभव उन्हें हुआ, उन भावों की अभिव्यक्ति इस खण्डकाव्य में हुयी है। विद्वानों के अभिमत एवं डाक्टर साहब के उपलब्ध महत्वपूर्ण प्रकाशनों की सूची

के कारण पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गयी है। पुस्तक पठनीय है और डाक्टर साहब के विचार चिन्तनीय हैं।

- अंशु जैन 'अमर'

भैया भगवतीदास और उनका साहित्य : प्रणेता डॉ. उषा जैन, बिजनौर; प्र. अखिल भारतीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद (उ.प्र.); २००६ ई.; पृ. २२८+१६; मूल्य रु. २५०/-

प्रस्तुत कृति वर्धमान कालेज, बिजनौर, के हिन्दी विभाग में रीडर एवं अध्यक्ष रही डॉ. उषा जैन द्वारा सन् १९७६ ई. में आगरा विश्वविद्यालय से सम्पन्न शोध कार्य का दूसरा परिवर्धित संस्करण है। यद्यपि हिन्दी जैन साहित्य में भवगतीदास नाम के अनेक विद्वान हुए, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आगरा निवासी आध्यात्मिक कवि भैया भगवतीदास, जिन्होंने संवत् १७५५ अर्थात् १६९८ ई. में अपनी कृतियों का संकलन **ब्रह्मविलास** नाम से किया था, के सम्बन्ध में है। **ब्रहमविलास** में संवत् १७३१ से सं. १७५५ तक कवि द्वारा रचित ६७ कृतियां संग्रहीत हैं। मुग़ल बादशाह औरंगजेब के शासनकाल तथा हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में हुए कविवर भैया भगवतीदास; उनकी समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों, उनकी सभी कृतियों और उनमें समाहित भाव पक्ष, कला पक्ष आदि का सम्यक् अध्ययन सात अध्यायों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है। साथ ही सन्दर्भ-ग्रंथ सूची के अतिरिक्त परिशिष्ट में ग्रंथ में यत्र-तत्र व्यवहृत जैन धर्म के पारिभाषिक शब्दों का अर्थ विषय को सुगम बनाने के लिये स्पष्ट किया गया है।

सम्पन्न ओसवाल वंश में उत्पन्न स्वान्तः सुखाय रचना करने वाले भगवतीदास अपने समय की रीति से हटकर एक उच्च कोटि के आध्यात्मिक संत एवं भक्त कवि थे। 'भैया' उनका उपनाम रहा। भावपक्ष और कलापक्ष में समुन्नत उनकी रचनाओं में ज्ञान और भक्ति की धारा साथ-साथ प्रवाहित हुई है। यद्यपि अनेक जैन धर्मानुयायियों को उनकी कई रचनाएं कंठस्थ हैं और उनका नित्यप्रति पाठ किया जाता है, किन्तु विडम्बना है कि वे भी इस कवि और उनके कृतित्व से प्रायः अपरिचित हैं, जैनेतर हिन्दी संसार की तो बात ही क्या ? अपनी लेखनी से हिन्दी भारती का भण्डार समृद्ध करने वाले इन अल्प चर्चित कवि भैया भगवतीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को इस ग्रंथ के माध्यम से सम्यक् रूप से उजागर करने हेतु विदुषी लेखिका साधुवाद की पात्र हैं। आशा है अब हिन्दी साहित्य के अध्येता इस कवि

की कृतियों का उचित मूल्यांकन कर साहित्य के इतिहास में इन्हें यथोचित स्थान प्रदान करने की ओर अपना ध्यान देंगे।

भ. बाहुबली गीताख्यान : रच. कवि मनोहर मारवडकर, नागपुर; प्र. धर्ममंगल (मासिक), १, सलिल अपार्ट. ५७, सानेवाडी, औंध-पुणे-४११००७; फरवरी २००६; पृ. २८; मूल्य रु. ७/-

इस वर्ष श्रवणबेलगोल में सम्पन्न भ. गोम्मटेश्वर बाहुबलि की मूर्ति के महामस्तकाभिषेक के उपलक्ष में कवि मनोहर मारवडकर जी ने भ. बाहुबली का आख्यान १७ सरस गीतों में निबद्ध किया है। और इस गीताख्यान को 'धर्ममंगल' की विदुषी सम्पादिका लीलावती जी ने स्वरचित गोमटेश स्तुति तथा सिद्धांत चक्रवर्ती नेमिचन्द्र द्वारा कन्नड में विरचित गोमटेश स्तुति और उसके सुन्दर हिन्दी पद्यानुवाद, परिचय एवं अपने सम्पादकीय से सज्जित कर प्रकाशित किया है। यह लघु पुस्तिका श्रद्धालु पाठकों को हृदयग्राही होगी।

जिनागम प्रवेश : सं. ब्र. संदीप 'सरल'; प्र. अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर)-४००११३ (म.प्र.); जून २००६ ई.; पृ. X+११०।

जिज्ञासुओं को जैन धर्म एवं दर्शन विषयक सामान्य ज्ञान १५ पाठों के अन्तर्गत ३०१ प्रश्नोत्तरों के माध्यम से प्रदान करने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है। सरल-सुबोध भाषा में निबद्ध यह कृति पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों पर आधारित है। शिक्षण शिविरों, स्वाध्याय प्रेमियों और सामान्य अध्येताओं के लिये यह पुस्तक उपयोगी होगी। इसके प्रणयन हेतु ब्र. संदीप 'सरल' जी साधुवाद के पात्र हैं।

भजन-मणिमाला : संकलनकर्ता श्री लूणकरण नाहर जैन ; प्र. लूणकरण कमलादेवी नाहर चैरिटेबिल ट्रस्ट, 'नाहर निकेतन', ५१४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ-२२६००४;, तृ.सं. जून २००६ ई.; पृ. Xii+१६४।

जैनधर्म एवं वीर प्रभु के चरणों में भक्ति-अनुरक्ति की १५४ मणियों को गूंथकर सुकवि, भक्त-श्रावक श्री लूणकरण नाहर जी ने प्रस्तुत कृति को वस्तुतः भजन-मणिमाला बना डाला है। इस मणिमाला के नियमित पठन से भक्तजन अपनी आत्मा का सहज उत्थान कर सकेंगे इस विश्वास के साथ श्री नाहर जी ने पूज्य मुनिराजों एवं अन्य कवियों द्वारा रचित अपने प्रिय भजनों के साथ-साथ सन् १९५८-२००६ ई. के मध्य स्वयं द्वारा रचित भजनों को भी स्थान दिया है। इसकी प्रस्तुति हेतु वह साधुवाद के पात्र हैं।

महाश्रमण : ले. मुनि अजितसागर; प्र. प्रकाश शोध संस्थान, प्रकाश हाउस, ४, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२; प्र.सं. २००५ ई.; पृ. ५८।

प्रस्तुत कृति में मुनिराज ने अपने दीक्षा गुरु आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के गुणों का भक्ति-गान कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है। आचार्य महाराज के भक्तों को कृति रुचिकर होगी।

माँ ने पूत जना (महाकाव्य) : रचयिता कवि प्रद्युम्न अनंग; प्र. अरुणोदय प्रकाशन, अग्रसेन नगर, रुद्रपुर-ऊधमसिंह नगर-२६३१५३ (उत्तरांचल); प्र. सं. जीरोक्स २००५ ई.; पृ. viii+२२३; मूल्य रु. १५०/-

छब्बीस वर्ष की अल्पवय में अपने इष्टदेव तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की भक्ति में डूबकर पूर्ण किया गया यह महाकाव्य निस्सन्देह कवि अनंग जी की उर्वर कल्पना शक्ति और काव्य-प्रतिभा का जीवन्त प्रमाण है। लीक से हटकर कवि ने इसमें वर्द्धमान के जुझारु, प्रबुद्ध, सृजनशील एवं ऊर्ध्वरेतस् व्यक्तित्व को ही उजागर किया है। और उनके विकास की समस्त प्रक्रिया में उनकी माता त्रिशला के वात्सल्य को सतत सहचर दिखाया है। ऐसा करके उन्होंने माँ के रूप में नारी की गरिमा को उचित मान प्रदान किया है। कवि ने माता और पुत्र के अलौकिक वात्सल्य का जो भावविभोर हो वर्णन किया है, वह उनके भावलोक की उपज है और लौकिक इतिहास से परे माँ और पूत के शाश्वत परात्पर सम्बन्ध को दृष्टि में रखकर है।

निशीथ बेला, गर्भ कल्याणक, भवावतरण, विकासः मंजिल दर मंजिल, महाभिनिष्क्रमण, तपश्चरण/साधना, मध्यान्ह, ज्ञान-प्रसार और मोक्ष - इन नौ सर्गों में निबद्ध यह कृति भावपक्ष और कलापक्ष उभय दृष्टि से समृद्ध है तथा महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों से युक्त है।

पचास वर्ष तक बक्से में बन्द रहे इस महाकाव्य को प्रकाश में लाने का श्रेय कवि की सुपुत्री अमर ज्योत्सना को है। डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी के समीक्षात्मक प्राक्कथन ने कृति में चार चाँद लगा दिये हैं। डॉ. चतुर्वेदी के अनुसार "वाल्मीकि, तुलसी या मैथिलीशरण के राम, सूर या हरिऔध के कृष्ण जिस रूप में सत्य हैं, कवि अनंग के त्रिशला और वर्द्धमान भी उसी रूप में सत्य हैं।" आशा है, साहित्यिरसिक इस महाकाव्य का अनुशीलन कर साहित्य जगत में इसे उचित प्रतिष्ठा प्रदान करेंगे।

मेरी यायावरी की आड़ी-तिरछी रेखाएं; शिक्षा सेवा; एकांकी कुंज (भाग-२); तथा राजस्थानी सन्त-साहित्य की लोकतात्त्विक भूमिका तृतीय खण्ड (बिन्दु) :

लेखक डॉ. हीरालाल श्रीमाली; प्र. मोतीबा प्रकाशन, खमनोर, हल्दीघाटी, जिला राजसमंद (राजस्थान); जनवरी, २००५ ई.; पृष्ठ क्रमशः ८०, १०२,१२५ तथा ८४

काफी संघर्षमय जीवन से गुजरते हुए पी-एच.डी. तक शैक्षणिक और एम.एड. तक प्रशैक्षणिक योग्यताएं अर्जित करने वाले, लगभग ३५ वर्ष तक शिक्षण तथा तदनन्तर अणुव्रत विश्वभारती से जुड़ समाजसेवा में रत रहने वाले, अनेक कृतियों के प्रणेता, कई पुरस्कारों और सम्मानों से अलंकृत, बहुआयामी प्रतिभा के धनी बन्धुवर डॉ. हीरालाल श्रीमाली से उपर्युक्त चारों पुस्तकें हमें भेंटस्वरूप प्राप्त हुई हैं।

प्रथम पुस्तक में जहाँ उनके विभिन्न स्थानों के भ्रमणों की दास्तान और उनके दौरान प्राप्त खट्टे-मीठे अनुभवों का वर्णन है, द्वितीय पुस्तक में उनकी शिक्षा और सेवा कार्यों का लेखा-जोखा दिया हुआ है। तृतीय पुस्तक में उनके द्वारा प्रणीत पांच एकांकी - युगान्तर, आजकल, परिवर्तन, सुखी परिवार और ग्रामीण युवक दल - संकलित हैं। चतुर्थ पुस्तक लेखक के पी-एच.डी. के शोध-प्रबन्ध 'राजस्थानी सन्त-साहित्य की लोकतात्विक भूमिका', जो पांच खण्डों में है, का तृतीय खण्ड है। इसमें सन्त-साहित्य में अलंकार योजना, लोक सुभाषित (कहावतें व मुहावरे) और रस योजना का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उपसंहार स्वरूप सन्त-साहित्य की लोकतात्विक भूमिका को सोदाहरण व्याख्यायित किया गया है। इन चारों पुस्तकों के प्रणयन हेतु डॉ. श्रीमाली साधुवाद के पात्र हैं।

- रमा कान्त जैन

◆◆◆

सामयिक परिदृश्य

क्षणिकाएं

राजनेताओं को आशीर्वाद देना हमारा कर्म रहा है
और उसका प्रचार करना हमारा धर्म रहा है
कर्म और धर्म का यह अनूठा ज्ञानमय संगम,
भक्तों का हृदय भावविभोर बखूबी कर रहा है।।

◆◆ ◆◆ ◆◆

मानस्तम्भ हमारा गगन से है ऊँचा
विद्यावान हमारे समान यहाँ नहीं दूजा
नित नूतन इतिहास हम हैं रचाते
उसे जान भक्त हमारे नहीं अघाते।।

- रमा कान्त जैन

स्मृतिशेष सुधा जिन्दल

अमरोहा में श्री कस्तूर चंद जैन और श्रीमती विमला जैन की सुपुत्री के रूप में १८.१२.१९५२ ई. को जन्मी सुधा ०४.१२.१९७३ को श्री आलोक जिन्दल की पत्नी के रूप में लखनऊ आ गईं। पति के सहयोग और सास (स्व. प्रियम्वदा) तथ श्वसुर (स्व. कैलाशभूषण जिन्दल) की प्रेरणा पाकर वह लखनऊ की सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों से जुड़ीं।

लखनऊ दूरदर्शन से नाट्य-लेखन, मंचन, स्क्रिप्ट लेखन तथा परिचर्चा-संयोजक के रूप में वह जुड़ीं। प्रथम परिचर्चा **'अमरवाणी'** कार्यक्रम में **'पर्यूषण पर्व'** पर मेरे साथ २९.०९. १९८८ को टेलीकास्ट हुई। कुछ अन्य परिचर्चाओं में भी वह मेरे साथ सहभागी रहीं। आकाशवाणी से भी वह जुड़ीं और मेरा साक्षात्कार भी लिया। उनकी दो वार्ताएं मरणोपरांत भी प्रसारित हुईं।

लखनऊ जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन की वह उपाध्यक्ष रहीं और भारतीय लेखिका संघ से भी सक्रिय रूप से जुड़ी रहीं। उनकी साहित्यिक व सांस्कृतिक अभिरुचि को रेखांकित करते हुए एक नवोदित प्रतिभा के रूप में १० मई, १९८७ ई. को **अनन्त-ज्योति विद्यापीठ** द्वारा उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया था। **शोधादर्श** की वह नियमित पाठक थीं और उनके कई नाटक और लेख भी इसमें प्रकाशित हुए हैं।

लखनऊ की जैन समाज की सांस्कृतिक गतिविधियों में और नारी समुदाय में जागृति लाने में वह अन्त समय तक सक्रिय रहीं। जैन महिला मण्डल की अध्यक्षा भी रहीं। संगीत एवं नाटक में उनकी विशेष अभिरुचि थी। समाज के बाल कलाकारों द्वारा कई नाटकों का मंचन किया। एम.ए., एल. एल. बी. तक शिक्षा प्राप्त, वह अपने श्वसुर की प्रेरणा से उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ, में एडवोकेट के रूप में प्रैक्टिस भी करने लगी थीं। विशेष गुण यह था कि सामाजिक व सार्वजनिक कार्यों में संलग्न रहते हुए भी कभी वह अपने पारिवारिक दायित्वों के प्रति उदासीन नहीं हुईं। अपने वृद्ध एवं रुग्ण सास व श्वसुर की सेवा-परिचर्या वह निष्ठापूर्वक करती रहीं और एक सुयोग्य गृहिणी का दायित्व कुशलतापूर्वक निभाती रहीं। उनकी पुत्री मनीषा विवाहित है और अमरीका में अपने परिवार के साथ सुखी है। पुत्र आनन्द होटल मैनेजर है।

मात्र ५३ वर्ष की वय में, संक्षिप्त बीमारी के बाद, हृदयाघात से ०८.४.२००६ को सुधा का अनायास असमय निधन हो गया। आलोक नितान्त एकाकी हो गये। अपने विविध कार्यकलापों के बारे में सुधा प्रायः मुझसे चर्चा व परामर्श करती रहती थीं और मुझे निरंतर ही पितृवत सम्मान व मित्रवत सहयोग देती रही थीं। मेरा एक विनयवान, स्नेही व प्रशंसक मित्र चला गया जिसकी स्मृति भूलेगी नहीं।

– डॉ. शशि कान्त

पत्रकार-शिरोमणि ज्ञानचंद जैन

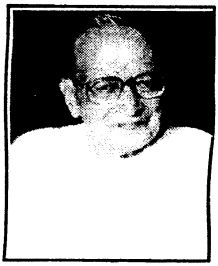

१८ जुलाई, २००६ ई., को प्रातः ६ बजे लखनऊ स्थित अपने आवास 'शिखर भवन' में श्री ज्ञानचंद जी जैन के परलोक गमन के साथ भारतीय पत्रकारिता भवन का एक खम्भा और ढह गया। पत्रकार धर्मिता के प्रति समर्पित वह ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी युवावस्था में हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य सृजन को उस समय अपनाया जब ये आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं थे और तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों में खतरे से भी खाली नहीं थे। अपनी मातृभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम और देश की अस्मिता के प्रति आसक्ति को ही इसमें हेतु कहा जायेगा।

श्री ज्ञानचंद जी का जन्म ८ फरवरी, १९१८ ई., को जौनपुर में हुआ जहाँ उनके पिता श्री सुमतिलाल जैन पुलिस कार्यालय में नियुक्त थे। श्री सुमतिलाल जी एक समाज चेता व्यक्ति थे और १९१८ से १९६८ तक पूरे ५० वर्ष उन्होंने स्याद्वाद विद्यालय वाराणसी के मंत्री के रूप में अपनी मानद सेवायें समाज को दी थीं।

श्री ज्ञानचंद जी की बी.ए. (१९३६ ई.) तक की शिक्षा लखनऊ में हुई। उन्होंने १९३८ ई. में आगरा विश्वविद्यालय से एल-एल.बी. और १९४१ में इलाहाबाद वि.वि. से एम.ए. किया। १९३५ से ही उन्हें साहित्य सृजन का व्यसन लग गया जब उनकी पहली कहानी **'हंस'** में प्रकाशित हुई। १९३८ में वह हिन्दी पत्रकारिता से जुड़े और इलाहाबाद में राष्ट्रवादी दैनिक **'भारत'** के सम्पादकीय विभाग में योगदान प्रारंभ किया। नवम्बर १९४७ में लखनऊ आ गये और तबसे लखनऊ के ही हो गये। नवम्बर १९४७ से फरवरी १९७६ तक राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक **'नवजीवन' के सम्पादन** से जुड़े। १९७६-७७ में गढ़वाल विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग की स्थापना की। पुनः लखनऊ में दैनिक **'स्वतन्त्र भारत'** में १९७७ से १९८८ तक सम्पादकीय अग्रलेख लेखक के रूप में जुड़े। उसके बाद उन्होंने सक्रिय पत्रकारिता से विराम ले लिया और गृह-संन्यासी बन पूरी तरह साहित्य साधना में लग गये। पत्रकारिता जीवन के अपने संस्मरण उन्होंने अपनी पुस्तक **'पत्रकारिता के पचास वर्ष (१९३८-८८)'** में लेखबद्ध किये हैं जो उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो सकी। यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में उनके अवदान को रेखांकित करते हुए उत्तर प्रदेश प्रेस क्लब द्वारा २००४ ई. में **'पत्रकार शिरोमणि'** अलंकरण से उन्हें सम्मानित किया गया। २७ अप्रेल, २००५ ई., को उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा उन्हें **'पत्रकारिता भूषण'** सम्मान और ५०,०००/- रु. की राशि भेंट की गई। १६ जनवरी, २००६ ई., को उत्तर प्रदेश शासन द्वारा हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट अवदान के लिए **'यश भारती'** सम्मान और ५ लाख रु. की निधि भेंट की गई। स्वतन्त्रता संग्राम में पत्रकारों के योगदान से सम्बन्धित शासकीय समिति के वह प्रारंभ में १९९० में ही सदस्य मनोनीत किये गये थे और जनवरी १९९२ में उन्हें तत्कालीन मुख्यमंत्री ने कुछ अन्य पत्रकारों के साथ शाल ओढ़ाकर स्वतंत्रता संग्राम में योगदान के लिये भी सम्मानित किया था।

हमारे परिवार से श्री ज्ञानचंदजी के १९४७ से ही आत्मीय संबंध रहे। वह पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को गुरु-तुल्य अग्रज मानते थे और उनसे प्रायः मार्गदर्शन लेते रहते थे। पिता जी की श्रद्धांजलि सभा (२५-६-१९८८) के आयोजन में उनकी महती भूमिका थी (दृष्टव्य, **शोधादर्श-डॉ. ज्योति प्रसाद जैन श्रद्धांजलि अंक**, जुलाई १९८८)। चाचाजी श्री अजित प्रसाद जैन से भी उनका सौहार्द था (दृष्टव्य, **शोधादर्श-श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक**, नवम्बर २००५)। **'शोधादर्श'** के वह प्रशंसक पारखी पाठक थे। **शोधादर्श-३५, ४०** और **४१** में उनके चिन्तनीय लेख

प्रकाशित हुए हैं। अनुज रमा कान्त जैन के ललित निबन्ध संग्रह **'गिलास आधा भरा है'** में उनका विद्वत्तापूर्ण तथा स्नेहसिक्त 'आमुख' है, और ११ जून, १९९९ ई. को उन्होंने ही इस पुस्तक का विमोचन भी किया था।

अनन्त-ज्योति विद्यापीठ द्वारा १० मई, १९८७ ई. को रविन्द्रालय में विद्वान मनीषी श्री ज्ञानचंद जैन का हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए सत्कार और सार्वजनिक अभिनंदन किया गया था। पुनः ११ जून, १९९८, को **विद्यापीठ** द्वारा अष्टासीति वर्ष वय ज्येष्ठ विद्वान मनीषी के रूप में उनका सम्मान किया गया था और उस समय उन्होंने जो उद्‌बोधन **'राष्ट्र का वर्तमान परिदृश्य चिन्ताजनक'** के रूप में दिया था वह उनकी पत्रकारिता धर्मिता के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है।

१९९० में, १९९२ में और २००० में उन्हें कई हृदयाघात हुए। दिसम्बर २००५ से वह गंभीर रूप से रुग्ण रहे और २१ मई, २००६, को कूल्हे की हड्डी टूट जाने से पूरी तरह शैयाग्रस्त हो गये। तदपि मृत्यु से एक सप्ताह पहले तक उनकी चेतना सजग रही। रुग्णावस्था में ही जनवरी-फरवरी में उन्होंने **'कवि बनारसीदास की अर्द्धकथा'** पर अपनी अन्तिम पुस्तक लिख डाली और उनके लिए यह सन्तोष का विषय रहा कि इसके प्रकाशन की सूचना उन्हें मृत्यु से पूर्व सचेत अवस्था में ही मिल गई। अपने मित्र भगवतीचरण वर्मा पर लिखी पुस्तक के प्रकाशन की सूचना भी अन्त समय तक उन्हें मिल गई। १९९० से रुग्णावस्था में ही उन्होंने **'प्रेमचंद के पूर्व हिन्दी उपन्यास'**, **'कथा शेष'** (अमृतलाल नागर संबंधी संस्मरण) और **'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - एक व्यक्तित्व चित्र'** का प्रणयन किया जो क्रमशः १९९८, २००० और २००३ में प्रकाशित हुए।

यद्यपि श्रद्धेय ज्ञानचंदजी मुझसे आयु में १४ वर्ष बड़े थे, वह मुझे एक सम्माननीय मित्र का महत्व देते थे। जब मैं एम. ए. का विद्यार्थी ही था, उन्होंने ६ अप्रैल, १९५२, को मेरा लेख **'महावीर और उनका संदेश'** **'नवजीवन'** के रविवासरीय परिशिष्ट में प्रकाशित किया - सार्वजनिक रूप में प्रकाशित यह मेरा प्रथम लेख था। २६-२९ अक्टूबर, १९७५, में मेरे द्वारा आयोजित **'भारतीय संस्कृति में जैन विचारधारा'** पर चार दिवसीय संगोष्ठी में **'भारतीय लोक संस्कृति का जैन पक्ष'** विषयक सत्र में उन्होंने **'पर्व और त्यौहार'** पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। १३ अप्रेल, १९९५, को आकाशवाणी लखनऊ से **'तप और त्याग के प्रतीक भगवान महावीर'** पर मेरी सहभागिता में उनकी परिचर्चा प्रसारित हुई।

ज्ञानचंद जी एक निष्ठावान श्रावक थे जो पूजा पाठ के क्रियाकाण्ड और धर्मात्मापन के प्रदर्शन में रुचि नहीं रखते थे वरन् जैनधर्म के मर्म को समझने की जिज्ञासा रखते थे। इतिहास के प्रति अनुसंधान प्रिय थे। पिताजी डा. ज्योति प्रसाद जी की प्रेरणा से उन्होंने **'निगन्ठ ज्ञातपुत्र'** का प्रणयन किया जो उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा १९७७ में प्रकाशित हुई।

साहित्यिक व सांस्कृतिक विरासत के अलावा वह अपने पीछे एक भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं - सहधर्मिणी, २ पुत्र और ८ पुत्रियां तथा उनके पुत्र-कलत्र, प्रपौत्र की सीढ़ी तक - प्रायः एक शतक से अधिक सन्तति। आयु के उस मोड़ और स्वास्थ्य के उस कगार तथा यश के उस शिखर पर वह पहुंच चुके थे कि शरीर-शेष होना अप्रत्याशित नहीं था। परन्तु मेरे लिए यह एक व्यक्तिगत त्रासदी रही। जब मार्च २००४ में मैंने **Frown/संतर्जन** का प्रकाशन किया तो उन्होंने भारतीयत्व और युक्तियुक्त चिन्तन के प्रखर संवाहक के रूप में इस पत्रिका का गर्मजोशी से स्वागत किया और साहसपूर्ण सत्प्रयास के लिए मेरा अभिनन्दन किया। ८ अगस्त २००५ को मुझे लिखे अपने अंतिम पत्र में उन्होंने जो भावात्मक उद्‌गार व्यक्त किये- 'आप ऊंचे दर्जे के विद्वान्, मौलिक चिंतक तो हैं ही, प्राचीन भारतीय इतिहास के पंडित भी हैं। आपका Interpreting the Ancient Epigraphs of India पढ़कर मुग्ध हो गया - वे मेरे लिए एक सहृदय मित्र और वय ज्येष्ठ विद्वान मनीषी के आशीष स्वरूप सदा स्मरणीय रहेंगे।

- डॉ. शशि कान्त

समाचार-विमर्श

अब तैयार होंगे एजुकेटेड कसाई

भोपाल-राष्ट्रीय इंदिरा गांधी ओपन यूनिवर्सिटी अब पढ़े-लिखे नौजवानों को इन विषयों पर केंद्रित कर आधुनिक कसाई बनने के गुर सिखायेगी। मांसाहारी आबादी को ध्यान में रखते हुए इग्नू ने मांस के व्यवसाय का आधुनिकीकरण करते हुए मीट टेक्नोलाजी का नया कोर्स तैयार किया है। एक वर्ष अवधि वाले इस पाठ्यक्रम में बारहवीं पास नौजवान बाइस सौ रुपये में एडमिशन ले सकता है। देश की मांसाहारी आबादी को बीमारी रहित जानवरों का मांस साफ-सुथरे तरीके से उपलब्ध कराने के लिये एक पाठ्यक्रम तैयार किया गया है। इसके तहत मांस के व्यवसाय से संबंधित सभी विषयों का वैज्ञानिक अध्ययन कराया जायेगा।

– वीतराग वाणी (टीकमगढ़)

माह मई-जून, २००६, पृ. ३१-३२

उपर्युक्त समाचार से जहां एक ओर इग्नू की देश के मांसाहारियों के स्वास्थ्य और उनके लिये उपर्युक्त मांसाहार उपलब्ध कराने की चिन्ता उजागर हुई, वहीं दूसरी ओर इस प्रकार का पाठ्यक्रम आयोजित कर उसने देश की अहिंसाप्रेमी शाकाहारी जनता जो बहुसंख्यक है, की भावनाओं को आहत किया है। इस प्रकार का पाठ्यक्रम मांसाहार को बढ़ावा देने वाला है। स्वाद के लिये निरीह प्राणियों का वध निंदनीय है। इग्नू को इस सम्बन्ध में पुनर्विचार करना चाहिये।

'भारत माता की जय' नारे पर पुंछ प्रशासन का प्रतिबंध

पुंछ (जम्मू कश्मीर), १७ जुलाई (जासं)। बाबा बुड्ढ़ा अमरनाथ की यात्रा के दौरान 'भारत माता की जय' नारा लगाने पर पाबंदी लगा दी गई है। यह पाबंदी यात्रा के प्रबंधों का जायजा लेने आये डिवीजनल कमिश्नर (डीसी) प्रमोद जैन ने लगायी है। उनका तर्क है कि यह नारा दूसरे समुदाय के लोगों को नागवार गुजरेगा, जिससे माहौल खराब हो सकता है।

– दैनिक जागरण, लखनऊ, १८ जुलाई, २००६ मुख पृष्ठ

'भारत माता की जय' नारा कोई धार्मिक या साम्प्रदायिक नारा नहीं है, अपितु यह भारत को अपना देश स्वीकार करने वाले सभी भारतवासियों, चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हों, द्वारा अपनी मातृभूमि को नमन् है। इससे किसी भी र्मानुयायी की भावना आहत होने का प्रश्न नहीं उठता। पुँछ (जम्मू कश्मीर) भारत गणतन्त्र का अंग है वहाँ 'भारत माता की जय' बोलने पर पाबन्दी लगाया जाना हास्यास्पद ही नहीं वरन् निन्दनीय भी है। दुर्योग से पाबन्दी लगाने वाले अधिकारी एक जैन बन्धु हैं। इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होने के बावजूद उन्हें धार्मिक या साम्प्रदायिक उन्माद भड़काने वाले और देश प्रेम सम्बन्धी नारों के बीच अन्तर स्पष्ट नहीं है या यह समझा जाय कि पुंछ में रहने वाले दूसरे समुदाय के लोग भारत को अपनी मातृभमि नहीं मानते। — रमा कान्त जैन

समाचार-विविधा

श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, गुरुवार, १ जून, २००६ ई., को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के चारबाग, लखनऊ, स्थित शोध पुस्तकालय में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में **षट्खण्डागम** शास्त्र ग्रन्थों और वाग्देवी- श्रुतदेवी-सरस्वती के चित्र को प्रतिष्ठित कर मंगलाचरण स्वरूप जिनवाणी वंदना और सरस्वतीं पूजन के साथ श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। कार्यक्रम का संचालन महामंत्री श्री रमा कान्त जैन ने किया। सर्वप्रथम इस पर्व के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालने हेतु **शोधादर्श-२६** (जुलाई १९९५ ई.) में प्रकाशित श्रद्धेय अजित प्रसाद जैन जी के आलेख "वाग्देवी के अवतरण का पर्व - श्रुत पंचमी" का वाचन हुआ और बतलाया गया कि अब से ३० वर्ष पूर्व सन् १९७६ ई. में इस दिन इस शोध पुस्तकालय की स्थापना हुई थी। तदनन्तर श्री प्रकाशचन्द्र 'दास', डॉ. शशिकान्त, श्री आदित्य जैन, श्री भगवान भरोसे जैन, श्री दिनेश चन्द्र जैन, डॉ. पूर्णचन्द्र जैन, श्री पूनमचंद जैन और श्री नरेशचन्द्र जैन ने इस पर्व के सम्बन्ध में अन्य विविध जानकारी प्रस्तुत की और अपने विचार व्यक्त किये। डॉ. शशि कान्त ने शास्त्रों का स्वाध्याय विवेकपूर्ण दृष्टि से किये जाने तथा श्री नरेशचन्द्र जी ने मंदिरों में रखे शास्त्रों की सार-सम्हाल किये जाने और उनका सूचीकरण किये जाने पर बल दिया। श्री हंसराज जैन ने अपने भजन "श्री प्रभुवर के चरणों में शीश नवाने आया हूँ, वाणी में तनिक मिठास नहीं पर विनय सुनाने आया हूँ" तथा श्री लूणकरण नाहर जैन ने भजन "जपा कर, जपा कर, जपा कर, महामन्त्र नवकार प्रतिदिन जपा कर" सुनाकर वातावरण रससिक्त किया। अन्त में जिनवाणी की स्तुति के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। प्रभावना वितरण का पुण्यलाभ श्री दिनेश चन्द्र जैन, मोतीनगर, लखनऊ ने लिया।

ज्योति स्मृति-गोष्ठी एवं काव्य-संध्या

११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १८वीं पुण्यतिथि पर उनका पुनीत स्मरण करने हेतु वयोवृद्ध समाजसेवी श्री धनेन्द्र कुमार जैन की अध्यक्षता में स्मृति-गोष्ठी और काव्य-संध्या आयोजित हुई। संचालन श्री रमा कान्त जैन ने किया।

श्रद्धेय डाक्टर साहब तथा वाग्देवी सरस्वती के चित्रों पर माल्यार्पण एवं दीप-प्रज्ज्वलन किया गया। तदनन्तर श्रीमती मंजरी जैन, श्रीमती मोहिनी जैन, श्रीमती सीमा जैन और डॉ. अलका अग्रवाल द्वारा डाक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन तथा श्री नन्दकुमार मनोचा 'वारिज' द्वारा वाणी-वन्दना के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। डॉ. शशि कान्त ने डाक्टर साहब को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए इतिहास के प्रति उनकी दृष्टि पर प्रकाश डाला। डॉ. अलका अग्रवाल ने डाक्टर साहब के लेख 'इतिहास की उपयोगिता' का वाचन किया। सर्वश्री नरेश चन्द्र जैन, विष्णुदत्त शर्मा, लूणकरण नाहर, रवि

मोहन त्रिवेदी, मधुकर अस्थाना, कु. शगुन जैन, वीरेन्द्र अंशुमाली, प्रेमचन्द्र सैनी, मधुरिम जैन, डॉ. अवधेश अग्रवाल, इंजी. राजीवकान्त, सर्वजीत मिश्र, शिवभजन कमलेश, रवि अवस्थी, नन्दकुमार मनोचा 'वारिज', शैलेन्द्र शुक्ल, रमाकान्त और डी. के. जैन ने डाक्टर साहब को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री लूणकरण नाहर ने एक आध्यात्मिक भजन प्रस्तुत किया। सर्वश्री मधुकर अष्ठाना, वीरेन्द्र अंशुमाली, प्रेमचन्द्र सैनी, शिवभजन कमलेश एवं नन्द कुमार मनोचा 'वारिज' ने भी अपने सरस आध्यात्मिक गीतों से वातावरण को रससिक्त किया। इंजी. राजीवकान्त ने एक चिन्तनप्रद रचना प्रस्तुत की। सर्वश्री सर्वजीत मिश्र, शैलेन्द्र शुक्ल और रवि अवस्थी ने अपनी मधुर रचनाओं के साथ-साथ वर्तमान विसंगतियों पर चोट करने वाले मुक्तक भी सुनाये। डॉ. शशिकान्त ने अपनी भावभीनी रचना 'मैं सपनों का राही हूँ, मुझे अभी मत छेड़ो' सुनायी तथा श्री रमाकान्त ने अपनी हास्य-व्यंग्यपूर्ण क्षणिकाओं से श्रोताओं का मन मोहा। अध्यक्षीय उद्‌बोधन के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

श्री अजित प्रसाद जैन की प्रथम पुण्यतिथि

२५ जून, २००६ ई. को लखनऊ में निर्भीक पत्रकार एवं समाजसेवी स्व. श्री अजित प्रसाद जैन की प्रथम पुण्यतिथि मनाई गई। वह **'शोधादर्श'** (लखनऊ) और **'समन्य वाणी'** (जयपुर) पत्रिकाओं के प्रधान सम्पादक तथा तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के संस्थापक-महामंत्री रहे थे। अपने जीवनकाल में अनेक स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर की धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे थे। एक धर्मनिष्ट सुश्रावक के रूप में उनकी ख्याति थी।

२५ जून की प्रातः तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के चारबाग स्थित शोध पुस्तकालय में उनके चित्र पर माल्यार्पण और उनके प्रिय स्तोत्र 'महावीराष्टक' का सामूहिक पाठ हुआ। मध्याह्न में मोतीनगर में स्थित अनाथालय के बच्चों को भोजन वितरित किया गया तथा अलीगंज में स्थित वृद्धाश्रम के संवासियों के लिये वस्त्र प्रदान किये गये।

सायंकाल श्रद्धेय अजित प्रसाद जी के आवास 'पारस सदन', आर्यनगर में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में श्रद्धांजलि सभा हुई। श्री नलिन कान्त जैन ने श्री अजित प्रसाद जी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। श्री नरेश चन्द्र जैन ने अपने संस्मरणों और उद्‌गारों में समाज सेवा के कार्यों में उनके द्वारा दी गई प्रेरणा को अभिव्यक्त किया। श्री रोहित कुमार जैन ने अपनी काव्यांजलि 'ऐसे थे हमारे बाबू अजित प्रसाद' अर्पित की। श्री लूणकरण नाहर जैन ने भी शोधादर्श के प्रज्ञावान सम्पादक अजित प्रसाद जी को अपने काव्य-सुमन अर्पित किये। श्री मयंक जैन ने अपने बाबा जी श्री अजित प्रसाद जी से सम्बंधित संस्मरण सुनाते हुए उनकी डायरी में संकलित काव्यांशों का वाचन किया। डॉ. शशि कान्त ने अपने संस्मरणों में उनके द्वारा धार्मिक विषयों पर पूर्वाग्रह रहित उदार दृष्टिकोण अपनाये जाने की बात रेखांकित की और श्री रमा कान्त जैन ने उनके प्रति अपनी भावभीनी काव्यांजलि प्रस्तुत की। तदनन्तर सभी परिवारीजनों और इष्टमित्रों द्वारा एक घंटे 'णमोकार मंत्र' का सामूहिक पाठ किया गया।

पंचग्रन्थी व्याकरण का लोकार्पण

आचार्य बुद्धिसागर सूरि द्वारा १०वीं-११वीं शती ई. में रचित और डॉ. एन. एम. कंसारा द्वारा अधुना सम्पादित **पंचग्रन्थी व्याकरण** का लोकार्पण राज्य सभा सदस्य डॉ. (श्रीमती) कपिला वात्स्यायन ने भोगीलाल लहेरचन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डॉलॉजी द्वारा ४ मार्च, २००६ को नई दिल्ली में आयोजित समारोह में किया। इस अवसर पर डॉ. जितेन्द्र बी. शाह (अहमदाबाद) की अध्यक्षता में एक संगोष्ठी भी हुई जिसमें उन्होंने उक्त व्याकरण ग्रन्थ के महत्व पर प्रकाश डाला तथा ६ विद्वानों ने अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किये।

कन्नड में जैन साहित्यिक कृतियां संगोष्ठी

११ एवं १२ मार्च को भारतीय विद्या भवन, मैसूर में ब्राह्मी जैन सोसायटी, टोरन्टो, द्वारा 'कन्नड में जैन साहित्यिक कृतियां' विषयक दो-दिवसीय संगोष्ठी आयोजित हुई। इसकी अध्यक्षता कर्णाटक विश्वविद्यालय के प्रो. एस. एस. सेत्तार ने की तथा ११ विद्वानों ने अपने शोध-पत्रों का वाचन किया।

अखिल भारतीय जैन पत्रकार सम्मेलन

१८ एवं १९ मार्च को आध्यात्मिक साधना केन्द्र, दिल्ली, में अखिल भारतीय जैन पत्रकार सम्मेलन सम्पन्न हुआ। केन्द्रीय मंत्री श्री ऑस्कर फर्नान्डिस ने उसका उद्घाटन किया और लगभग ४० पत्रकारों ने उसमें भाग लिया। सम्मेलन में जो निर्णय लिये गये उनमें महत्वपूर्ण हैं-

१. जैन पत्रकारों को निष्पक्ष और निर्भय होकर अपने दायित्व को पूरा करना चाहिये। पत्रकार की कलम की धार कुन्द नहीं पड़नी चाहिए। न पत्रकार की कलम बिकनी चाहिये और न ही गिरवी रखी जानी चाहिये। पत्रकारों को समाज में व्याप्त कुरूढ़ियों, गलत परम्पराओं एवं शिथिलाचार का विरोध करना चाहिये तथा उच्च मूल्यों एवं मर्यादाओं को प्रतिष्ठित करना चाहिये।

२. पत्र-पत्रिकाएं 'सद्भावना के द्वार' की भूमिका निभायें। दूसरे वर्ग की मान्यताओं और भावनाओं पर आक्षेपात्मक समाचार या लेख प्रकाशित न करें। समाज के सभी वर्गों की अच्छी गतिविधियों को व्यक्तिगत और साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर अपनी पत्र-पत्रिकाओं में स्थान दें।

लन्दन विश्वविद्यालय में जैन दर्शन का अध्ययन

लन्दन विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ ओरियन्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज के अन्तर्गत सन् २००४ में एक जैन अध्ययन केन्द्र स्थापित हुआ। इसमें स्नातक एवं

स्नातकोत्तर शोध कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं और यूरोप, अमेरिका एवं जापान आदि देशों से छात्र अध्ययनार्थ आते हैं। विशेष व्याख्यान एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियां भी केन्द्र द्वारा आयोजित की जाती हैं। मार्च २००६ से एक न्यूज लैटर भी प्रकाशित किया जा रहा है। २६ मार्च, २००६ को एक कार्यशाला आयोजित हुई जिसमें डॉ. सत्यरंजन बनर्जी (कोलकाता), डॉ. धर्मचन्द जैन (जोधपुर), डॉ. सुशील कुमार जैन (कनाडा), डॉ. जितेन्द्रभाई शाह (अहमदाबाद) और डॉ. पीटर फ्यूगल (लंदन) ने जैन विद्या से सम्बद्ध विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम का संचालन श्री हर्षदभाई संघराज ने किया।

बी. एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डॉलॉजी की मासिक अध्ययन संगोष्ठियां

८ अप्रैल को श्री देवेन यशवंत ने 'जैन एवं अन्य भारतीय दर्शनों में अनेकान्त' विषयक अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया और ६ मई को डॉ. लक्ष्मीबाला अग्रवाल ने 'जैनाचार्य पार्श्वदेव (१३वीं शती) कृत संगीत समयसार-एक अध्ययन' विषयक अपना शोध - पत्र प्रस्तुत किया।

प्रधानमंत्री द्वारा ब्रिटिश लाइब्रेरी के ग्रन्थों का लोकार्पण

२७ मई को विज्ञान भवन, नई दिल्ली, में इन्स्टीट्यूट ऑफ जैनोलॉजी, अहमदाबाद, द्वारा आयोजित कार्यक्रम में भारत के प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने ब्रिटिश लायब्रेरी में संगृहीत जैन पाण्डुलिपियों के तीन ग्रन्थों का लोकार्पण किया। इन पाण्डुलिपियों के सम्पादन कार्य से सम्बद्ध सुश्री नलिनी बलबीर ने उनमें समाहित व्याकरण, शब्दशास्त्र, नीति शास्त्र, गणित शास्त्र, खगोलशास्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र विषयों पर प्रकाश डाला। प्रधान मंत्री ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि ये प्राचीन पाण्डुलिपियां वंशानुगत संगृहीत हैं और ज्ञान भण्डार को बढ़ाने में सक्षम हैं। ये हमारे देश की गौरव गाथा हैं। समारोह में देश-विदेश के अनेक गण्यमान्य महानुभाव, विद्वान एवं साहित्यकार उपस्थित थे।

बद्रीनाथ में भ. आदिनाथ की वेदिका

इन्दौर निवासी सरसेठ हुकमचंद के दौहित्र श्री भरतकुमार मोदी एवं सौ. कुसुम मोदी ने श्री आदिनाथ भगवान की निर्वाण स्थली अष्टापद (बद्रीनाथ) पर भगवान आदिनाथ की प्रतिमा, चरण एवं वेदिका स्थापित किये जाने हेतु आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउण्डेशन, इन्दौर, को ११ लाख रुपये की धनराशि प्रदान की। कुछ कारणों से मूर्ति स्थापना अभी रुकी हुई है।

शाकाहार प्रचारक श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ

लाला महावीर प्रसाद जैन सर्राफ जो जैन एवं जैनेतर समाज में शाकहार प्रचारक एवं ध्यान विशेषज्ञ के रूप में जाने व माने जाते थे, **शोधादर्श** के प्रशंसक ऐसे सुधि पाठक थे कि वह इसमें प्रकाशित सामग्री का गहन मनन करके अपनी विस्तृत प्रतिक्रिया से विगत १५ वर्षों से नियमित रूप से अवगत कराते रहे थे। उनका जन्म खेकड़ा निवासी लाला बिशम्बरदास जी के यहां १८.४.१९२९ को हुआ था। १९३५ में उनके पिता जी व्यावसायिक कारणों से दिल्ली आ गए। उनका विवाह धर्मनिष्ठ - सुगृहिणी सुन्दरी देवी जैन के साथ हुआ। गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए वे हमेशा आत्म कल्याण और परकल्याण में दत्तचित्त रहे और बिशम्बरदास महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, के नाम से प्रतिष्ठित व्यावसायिक प्रतिष्ठान का संचालन नैतिकता और ईमनदारी से करते रहे। अपने सुयोग्य पुत्रों, ए. पी. जैन (F.C,.A.), वी. के. जैन, Director Indian Airlines, अनन्त जैन, C.A., एवं प्रवीन जैन, M.Com., जो कि शेयर के व्यवसाय में BDMP के नाम से जाने जाते हैं, को गृहस्थ का भार सौंपकर वे निर्द्वन्द्व बन गए और धर्माराधन व तीर्थाटन अब उनकी जीवन शैली बन गई थी। शाकाहार के प्रचार-प्रसार के लिए वह मुस्लिम देश दुबई तक गए। उनके पुत्रों ने एक नई वेबसाइट shakahar.com के नाम से शुरू की है। दिनांक ४.६.२००१ को जैन मिलन दरियागंज दिल्ली द्वारा 'श्रावक रत्न' की उपाधि व वर्ष २००५ में 'अहिंसा इन्टरनेशनल भगवान दास शोभा लाल शाकाहार पुरस्कार' से उन्हें सम्मानित किया गया था। अपने अन्तिम समय के २ सप्ताह पूर्व तक स्वास्थ्य कमजोर होने के बावजूद ४० दिन श्री श्रवणबेलगोल (बाहुबलीजी) में रहे। अन्ततः २७ मार्च, २००६ को सल्लेखनापूर्वक नश्वर शरीर को त्याग दिया और अपने जीवन को सार्थक बनाया।

- रमा कान्त जैन

अभिनंदन

श्री राजेन्द्र कुमार जैन, जबलपुर, को उनके शोध-प्रबंध **'भारतीय योग परंपरा और ज्ञानार्णव'** पर रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

प्रो. कृष्ण ए. गोसावी, मुम्बई, को उनके शोध-प्रबंध **'जैन धर्म में ईश्वर का स्वरूप'** पर जैन विश्वभारती, लाडनूं, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

श्री अशोक कवाड़ को उनके शोध-प्रबन्ध "A Study of Samyaktva Prakram According to Uttaradhyayan Sutra" पर मद्रास विश्वविद्यालय, चेन्नई, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

सुश्री श्वेता जैन को उनके शोध-प्रबन्ध **'जैनदर्शन में कारणवाद के संदर्भ में पंच समवाय'** पर जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

कु. स्निग्धा जैन, बाराबंकी, ने इस वर्ष प्रदेश की सी.पी.एम.टी. परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर जैन समाज का मान बढ़ाया।

डॉ. धर्मचंद जैन, कुरुक्षेत्र (हरियाणा), को वर्ष २००६ का **ऋषभदेव पुरस्कार** तथा **प्रा. सौ. लीलावती जैन, सम्पादिका धर्ममंगल, पुणे,** को पत्रकारिता हेतु **ऋषभांचल पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

११ अप्रैल, २००६ को श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोल में **श्री इरवथम महादेवन (चेन्नै), डॉ. जी. जवाहरलाल (राजमुंदरी, हैदराबाद), डॉ. एम.ए. जयचन्द्र (बैंगलोर), डॉ. वसुपाल (चेन्नै)** तथा **डॉ. एन. सुरेशकुमार (मैसूर)** को वर्ष २००६ के **श्री गोमटेश्वर विद्यापीठ अवार्ड;** संगीतज्ञ **श्री कुबेर भावु चौगुले (उडगांव)** को **श्री गोमटेश्वर विद्यापीठ कल्चरल अवार्ड** तथा **श्रीमती विमला सुमतिकुमार (बैंगलोर)** को **श्री ए.आर. नागराज अवार्ड** प्रदान किये गये।

डॉ. कपूरचन्द जैन एवं डॉ. ज्योति जैन, खतौली, को उनके ग्रन्थ 'स्वतन्त्रता संग्राम में जैन' के लिये श्री महावीर जी में १४ अप्रैल को **महावीर पुरस्कार** तथा तदनन्तर फिरोजाबाद में **रइधू पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

भगवान महावीर फाउण्डेशन, चेन्नई, द्वारा **डॉ. नेमीचन्द जैन स्मृति पुरस्कार** हेतु **डॉ. कुसुम लूणिया, गाजियाबाद,** की कृति 'शाकाहार-श्रेष्ठ आहार' तथा

डॉ. कल्याणमल गंगवाल, पुणे, की कृति "Vegetarianism Healthy way of Life" चयनित की गई।

वरिष्ठ समाजसेवी एवं पूर्व सांसद **श्री डालचंद जैन, सागर,** को ७ मई को भोपाल में 'जन परिषद' संस्था की ओर से मध्यप्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री *बलराम जाखड़* द्वारा **लाइफ एचीवमेन्ट अवार्ड** से सम्मानित किया गया।

श्री दुलीचन्द जैन को चेन्नै में सेंटेनेरियन ट्रस्ट की ओर से मिजोरम के पूर्व राज्यपाल *महामहिम* डॉ. ए. पद्मनाभन द्वारा **'सेवा रत्न'** अवार्ड से सम्मानित किया गया।

श्री नेमीचंद चोपड़ा (पाली) को एशियन एस्ट्रोलाजी कांग्रेस इण्डिया ने हरिद्वार में हुए अपने वार्षिक सम्मेलन में **भारत गौरव सम्मान** से सम्मानित किया।

डॉ. शशि कान्त, लखनऊ, को एस्ट्रालिजकल रिसर्च प्रोजेक्ट, कोलकाता द्वारा 29 th International Astrology & Oriental Heritage Conference 2006 A.D. में **महर्षि वेदव्यास सम्मान** से विभूषित किया गया।

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, में संस्कृत विभाग के एसोशिएट प्रोफेसर **डॉ. धर्मचंद जैन** को उक्त विश्वविद्यालय में खुले **'बौद्ध अध्ययन केन्द्र' के निदेशक का दायित्व सौंपा** गया।

श्री धर्मवीर जैन, पूर्व प्रमुख अभियन्ता लो.नि.वि., उ.प्र., लखनऊ, उत्तरांचल में राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग के सदस्य नियुक्त किये गये।

दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति **श्री विजेन्द्र जैन** उक्त उच्च न्यायालय में *मुख्य न्यायाधीश* के पद पर पदोन्नत किये गये।

श्री श्रीषेण रतनलाल डोणगांवकर मुम्बई उच्च न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त किये गये।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये शोधादर्श परिवार हार्दिक अभिनंदन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

२६ अप्रैल, २००६ को अलीगढ़ (टोंक) में ७२ वर्षीया सुश्राविका **श्रीमती कपूरीदेवी** (धर्मपत्नी स्व. सोभागमल जैन एवं मातुश्री डॉ. धर्मचंद जैन, जोधपुर) का स्वर्गगमन हो गया।

२८ मई को वाराणसी में भारत की प्राचीन कला के मर्मज्ञ विद्वान और राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली समेत विभिन्न संग्रहालय के महानिदेशक रह चुके ७० वर्षीय **डॉ. रमेशचन्द शर्मा** का निधन हो गया।

२ जून को जबलपुर में सुविख्यात लेखक श्री सुरेश जैन 'सरल' की धर्मनिष्ठ सद्गृहिणी **श्रीमती पुष्पा जैन 'सरल'** का हृदयाघात से आकस्मिक निधन हो गया।

१२ जून को गुड़गांव में ८४ वर्षीया विदुषी **श्रीमती प्रियम्वदा जिन्दल** (धर्मपत्नी स्व. कैलाशभूषण जिन्दल, आजीवन सदस्य, ती.म. स्मृति केन्द्र समिति) का देहावसान हो गया।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को एवं श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, श्रीमती सुधा जिन्दल और श्री ज्ञानचंद जैन को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है तथा शोक सन्तप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

श्री भरत कुमार मोदी, आशा भवन, ५, साउथ तुकोगंज, इन्दौर, ने **शोधादर्श** को रु. १०००/- प्रदान किये।

सर्वश्री अजित प्रसाद, वी. के. जैन, अनन्त जैन और प्रवीनकुमार जैन, ७/३६ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, ने अपने पूज्य पिताजी स्व. श्री महावीर प्रसाद जैन की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५०१/- प्रदान किये।

श्री सुरेश जैन 'सरल', सरल कुटी, २६३, गढ़ाफाटक, जबलपुर, ने अपनी धर्मपत्नी स्व. श्रीमती पुष्पा जैन 'सरल' की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १३१/- प्रदान किये।

डॉ. धर्मचंद जैन, ३ के २४-२५ कुडी भगतासनी हाउसिंग बोर्ड, जोधपुर, ने अपनी पूज्य माताजी स्व. श्रीमती कपूरीदेवी जैन की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १००/- प्रदान किये।

डॉ. शशि कान्त-रमा कान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ, ने अपने पूज्य पिताजी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन की १८वीं पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/- प्रदान किये।

पाठकों के पत्र

'शोधादर्श' का ५८वां अंक देखा। इस अंक में गोम्मटेश बाहुबलि के महामस्तकाभिषेक के उपलक्ष में कई विद्वानों द्वारा लिखे लेखों को पढ़कर बाहुबलि जी व उनकी विशाल प्रतिमा के निर्माण के सम्बन्ध में उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध में श्री अंशु जैन 'अमर' द्वारा लिखित लेख **'गोम्मट मस्तकाभिषेक'** विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने 'गोम्मट' शब्द के विभिन्न अर्थों का शोध करते हुए विद्वानों को प्रेरित करने का प्रयास किया कि वे इस शब्द के सम्बन्ध में विचारणीय बिन्दुओं को निष्कर्ष प्रदान करने की चेष्टा करें। 'गुरुगुण कीर्तन' में श्री रमा कान्त जैन का श्री गणेश प्रसाद वर्णी के सम्बन्ध में लेख भी प्रशंसनीय है जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि श्री वर्णी जी ने मुनि दीक्षा न लेते हुए भी मुनियों के समान आचरण करते हुए जैन मत के सिद्धांतों का सही प्रचार-प्रसार किया। **- श्री नरेश चन्द्र जैन, लखनऊ**

शोधदर्श के बाहुबलि विशेषांक में श्री अंशु जैन 'अमर' का आलेख **'गोम्मट मस्तकाभिषेक'** पढ़कर महती प्रसन्नता हुई। नई पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में गोम्मटेश्वर के संदर्भ में उठाए गये विचार बिन्दु निश्चय ही सटीक समाधान की अपेक्षा रखते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से गोम्मटेश्वर का विवेचन नई सोच को रेखांकित करता है। आलेख का अंतिम पैराग्राफ आधुनिक जैन समाज पर गहरी चोट है जो हमें कुछ सोचने को विवश करती है।

डॉ. अनंग रुद्रपुर एवं श्री जमनालाल जैन वाराणसी के चिन्तनपरक आलेखों ने दिगम्बर चिन्तन को एक नई दिशा दी है। प्राचीन परम्पराओं से हटकर आधुनिक परिवेश में किंचित् परिवर्तन अपेक्षित है या नहीं - इस पर गंभीर विचार विमर्श की आवश्यकता है। आपकी क्षणिकायें गहरी चोट करती हैं। **- डॉ. मालती जैन, मैनपुरी**

'शोधादर्श' मार्च २००६ अंक में प्रकाशित डॉ. मीना अग्रवाल के लेख 'जैन साहित्य में संगीत' तथा डॉ. रजनीश शुक्ल की प्रस्तुति 'पाली-प्राकृत मुक्तक काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन' ने विशेष रूप से प्रभावित किया। 'चिन्तनकण' में चिन्तन के लिए प्रचुर सामग्री है। श्री अजित प्रसाद जैन का अपनी परम्पराओं को न भूलने का आग्रह जैन-संस्कृति से जुड़ने की बलवती प्रेरणा प्रदान करता है। गोम्मट मस्तकाभिषेक पर आपने रोचक तथा ज्ञानवर्धक सामग्री देकर पाठकों का परम उपकार किया है। कविताओं में डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', श्री दयानंद जड़िया 'अबोध' तथा कीर्तिशेष श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि' की रचनाएं प्रशंसनीय हैं। कुल मिलाकर प्रस्तुत अंक सर्वथा संग्रहणीय है। **- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर**

अटठावन **शोधादर्श** मिला नाचा मयूर मन,
पढ़ा आदि से अन्त हुआ मानस का मंथन।
श्री गणेश वर्णी का परिचय ढंग निराला,
रमाकान्त का लेख शोध मय रोचक आला।
सम्पादकीय श्री रमाकान्त का बाहुबली पर
सूक्ष्म रूप में भी सब कह जाते उनके स्वर।
डाक्टर ज्योति प्रसाद, विधा में अपनी न्यारी,
'महागोमटेश्वर' महान की छवि विस्तारी।

श्री अजित जैन का पूर्व लेख यह इंगित करता
जैन धर्म की महापरम्पराओं में ही जीवन बसता
लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञानों के सूक्ष्म भेद सारे,
बतलाते डाक्टर शशि कान्त जी, कहने के ढंग हैं न्यारे
है 'प्रशान्त' की कविता जिसका अन्त नहीं है
'पतझड़ से जो बच पाया हो ऐसा कहीं बसन्त नहीं है'।
'नव वर्ष शान्त मन दो नववर्ष की बधाई'
'जड़िया' जी की काव्य रचना बहुत पसन्द आयी
महावीर ने कहा था हिंसा से दूर रहना
'जड़िया अबोध' कहते कविता में यह ही वचना
श्वेतांबर साहित्य में क्या संदेश विशेष,
डाक्टर मीना का वृहत शोध पूर्ण है लेख।
प्राकृत मुक्तक काव्य का सारभूत अनुबन्ध,
डाक्टर रजनीश शुक्ल का है शोध प्रबन्ध।
दिगंबरत्व मुनि भेष का वर्तमान औचित्य,
चर्चा शुभ प्रारंभ है इसका बड़ा महत्त्व।
गोम्मटेश स्थापना कथा विशेष विचित्र,
कैलाश चन्द्र जी शास्त्री खींच रहे हैं चित्र
बाहुबली प्रतिमा अमर उसका है इतिहास,
अंशु जैन का लेख है शोध पूर्ण आख्यान।
अन्य सभी स्तंभ भी करते ज्ञान प्रदान।
अति उपयोगी स्वयं में अतिशय महिमावान।

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', लखनऊ

शोधादर्श-५८ आद्यान्त पढ़ने का सुयोग मिला। श्री गोमटेश बाहुबली जी का महामस्तकाभिषेक वर्णन, जैन साहित्य में संगीत, पालि-प्राकृत मुक्तक काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन, दिगम्बरत्व की मर्यादायें, बूचड़खानों में पशुओं की निर्मम हत्या, जैसे लेख **शोधादर्श** के शिलालेख हैं। पूरा अंक प्रभावी तथा शोधोपयोगी है। **- डॉ. बारेलाल जैन, रीवा**

शोधादर्श में आपने पू. वर्णी जी का गुणानुवाद कर पुण्य स्मरण किया। पढ़कर हृदय गद्‌गद हो उठा। **- श्री कुन्दनलाल जैन, देहली**

शोधादर्श के माध्यम से आपके विचार और बहुत ही उपयोगी सामग्री निरन्तर पढ़ने को मिल जाती है। **- डॉ. फूलचंद जैन 'प्रेमी', वाराणसी**

शोधादर्श- ५८ के गुरुगुण कीर्तन में पू. क्षु. श्री गणेशप्रसाद जी की गौरव गाथा पढ़ी। कुछ अज्ञात बातें ज्ञात हुईं।

श्री अंशुजी जैन 'अमर' का शोधपरक आलेख 'गोम्मट मस्तकाभिषेक' पढ़ा। गोम्मट के संबध में साहित्यिक परिशीलन उनकी शोधपूर्ण गवेषणा में अत्यधिक रुचि को प्रदर्शित करता है, वह प्रशंसनीय है तथा विद्वानों को संशोधन के लिये प्रोत्साहित करने वाला लगता है।

यह आपका कथन सत्य ही है कि यह गोम्मटेश प्रतिमा वास्तविक तपस्वी मुनिराज बाहुबली की है न कि अरहंत बाहुबली की। अभिषेक न तो मुनिराज का होता है, न अरहंत का होता है। हिंदुओं की क्रियाकांड की सुधारित झलक जैनों में ब्राह्मण पुजारी (उपाध्ये) आदि से चल पड़ी है और क्रियाकांडियों में इतनी पैठ गई है कि वे इस पर पुनर्विचार करने को तैयार ही नहीं है। हिंदुओं जैसा स्नान या अभिषेक जैनों में यद्यपि नहीं है किन्तु वह सुधारित रूप में जैनों में चल पड़ा है यह सुनिश्चित है। **- श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर**

शोधादर्श- ५८ अंक में श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी विषयक आलेख बहुत ही प्रभाव उत्पन्न करने वाला है तथा उनकी महानता का सूचक है। गोम्मटेश बाहुबली के संबंध में उपयोगी जानकारी दी है। स्व. श्री अजित प्रसाद जी का आलेख 'अपनी परम्पराओं को न भूलें' बहुत ही सटीक और उपयोगी है। मर्यादा के खंडन के कारण ही लोकेष्णा में वह सब हो रहा है जो अत्यंत हेय/त्याज्य है। अपने को महान प्रदर्शित करने की भावना अनिष्टकारक है।

श्री अंशु जैन 'अमर' का आलेख 'गोम्मट मस्तकाभिषेक' बहुत शोधपरक सूचना देने वाला है। 'स्वास्थ्य चर्चा - हृदय रोग का उपचार' हेतु आभार।

- श्रीमती रंजना बंसल, अमलाई

शोधादर्श-५८ में श्री रमा कान्त जी का "श्री गणेशप्रसाद वर्णी" से संबंधित गुरुगुण कीर्तन अत्यंत भाववाही व नयी जानकारी देने वाला लगा।

डॉ. शशि कान्त का 'लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान' पर लेख भी बहुत ही उपयोगी, ज्ञानवर्धक एवं शिक्षाप्रद सामग्री सहित पढ़ने को मिला। पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हुई।

आपका यह अंक वाकई में बहुत ही शानदार, संग्रहणीय, शिक्षाप्रद सामग्री व आकर्षक रूप में प्रकाशित हुआ है। **- डॉ. ताराचंद्र जैन बख्शी, जयपुर**

शोधादर्श स्वाध्याय प्रेमियों, शोधार्थियों एवं शोधकर्ताओं के लिए परम उपयोगी व मंगलकारी पत्रिका है।

शोधादर्श-५८ में वर्तमान परिथितियों में जैन साधु का नग्न रहना उचित या अनुचित पृ. ३२ पर लेख पठनीय है एवं चिन्तनीय है। **- डॉ. रतनलाल जैन, हांसी**

शोधादर्श-५८ मार्च २००६ अंक पूरा पढ़ गया हूँ। अंक को आपने पूरा व्यवस्थित ढंग से सम्पादित किया है और सम्मान्य स्व. श्री अजित प्रसाद जी द्वारा छोड़े गये दायित्व का बखूबी निर्वहन किया है। गुरुगुणकीर्तन में पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी के सम्बन्ध में आपके विचार पढ़े, अच्छे लगे। बाहुबलि महामस्तकाभिषेक-२००६ पर आपका सम्पादकीय भी प्रासंगिक है। श्रवणबेलगोला में आयोजित विद्वत् सम्मेलन पर काफी टीका-टिप्पणी हुई है। ऐसा क्यों? क्षणिका में कुण्डलपुर पर जो व्यंग किया है वह सामायिक है। 'अपनी परंपराओं को न भूलें' श्री अजित प्रसाद जी, 'गोम्मट महामस्तकाभिषेक' श्री अंशु जैन 'अमर', डॉ. रजनीश शुक्ल के लेख भी पठनीय व शोधपरक हैं। चिंतन कण के अन्तर्गत श्री मनोहर मारवड़कर, सुश्री लीना विनायका

तथा डॉ. अनिल जैन अहमदाबाद के दिगम्बर मुनि के शहरों में नग्न भ्रमण के सम्बन्ध में विचार चिंतन व गवेषणा के विषय हैं। मुनियों के नगरों में नग्न भ्रमण पर दो विचार वाले व्यक्ति समाज में हैं - एक जो कह रहे हैं कि इस सैक्सोलॉजी कामुकता पाश्चात्य संस्कृति के युग में मुनियों को नगरों में नग्न भ्रमण नहीं करना चाहिए। दूसरे वे लोग हैं जो कहते हैं, नग्नता अश्लीलता नहीं है, अश्लीलता हमारे अन्तस्तल में है जिसे कृत्रिमता पसन्द है, प्राकृतिकता नहीं। फिर नग्न दशा में ही मोक्ष संभव है। दोनों विचार वाले अपनी-अपनी जगह सही हैं। पर आज के संदर्भ में इस पर गंभीरता से विचार होना चाहिए।

- पं. सुनील 'संचय', नरवां, सागर

शोधादर्श-५८ को पढ़ा एवं मनन-चिन्तन किया। इस अंक से ज्ञान की इतनी तर्कपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई जितनी अनेक ग्रन्थों के पढ़ने से न हो पाती।

'अपनी परम्पराओं को न भूलें' में श्री अजित प्रसाद जी जैन से तर्क पूर्ण जानकारी मिली। 'लौकिक और पारलौकिक ज्ञान' (डॉ. शशि कान्त) से आध्यात्मिक जानकारी प्राप्त होती है। 'जैन साहित्य में संगीत' डॉ. मीना अग्रवाल से संगीत और जैन सूत्रों का सर्वांग समन्वय जाना जाता है। डॉ. रजनीश शुक्ल, श्री मनोहर मारवडकर, सुश्री लीना विनायिका, डॉ. अनिल कुमार जैन, श्री अंशु जैन 'अमर', डॉ. भागचंद जैन भागेन्दु आदि के तथ्यपूर्ण चिन्तन युक्त लेख हैं।

शोधादर्श भारतीय जैन पत्रिकाओं में अपना सर्वोच्च स्थान रखती है। इस पत्रिका में न कोई विज्ञापन है, न कोई मांग की जाती है। कोई भी स्तरहीन बात नज़र नहीं आती।

- पं. सरमनलाल दिवाकर, सरधना (मेरठ)

शोधादर्श के मार्च २००६ के अंक में डॉ. अनिल कुमार जैन का लेख 'वर्तमान परिस्थितियों में साधु का नग्न रहना उचित या अनुचित' पढ़ा। साधुओं के नग्नत्व पर आज प्रश्नचिह्न उठाना अनुचित है। विकार नग्नत्व में नहीं बल्कि देखने वाले की नज़रों में होता है। दिगम्बर हमारी पहचान है, परम्परा है। जिसे हम और आप नग्नत्व कहते हैं वास्तव में वह हमारे मन व सोच की नग्नता है। **- श्री मनोज जैन 'मानव', सिकन्द्राबाद (उ.प्र.)**

पाया **शोधादर्श**, हर्ष अन्तर में छाया।
'प्राकृत-पाली-काव्य' लेख अच्छा मन भाया।।
''अनिल जैन'' का लेख, बात उपयोगी करता।
''ऐसा कहीं बसन्त नहीं है'' मन-दुख हरता।।
अट्ठावनवां अंक है यह, ज्ञान-कोष निज उर भरे।
मंजु बधाई 'दयानंद' है प्रियवर को अर्पित करे।।

- श्री दयानंद जड़िया 'अबोध', लखनऊ

शोधादर्श का प्रकाशन नियमित चल रहा है, इस बात की हमें अत्यधिक प्रसन्नता है।

ब्र. संदीप सरल, बीना

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है। मनीआर्डर भेजने पर एक पोस्ट कार्ड भी अपने पूरे नाम पते के साथ उसकी सूचना अवश्य भेजें।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिए। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की दो प्रतियां भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— प्रधान सम्पादक

नोट– ऊपर जहाँ–जहाँ 'पारस सदन, आर्यनगर' अंकित है उसके स्थान पर 'ज्योति निकुंज, चार बाग' पढ़ा जाय।